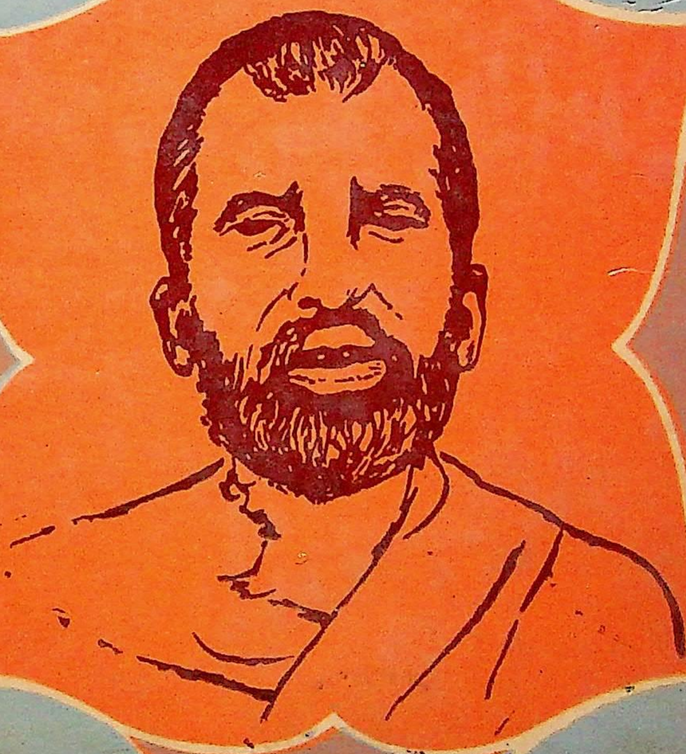
स्वामी रामकृष्ण परमहंस



ओउमप्रकाश शर्मा





स्वामी रामकृष्ण परमहंस

प्रस्तुत कर्त्ता

ओ३मप्रकाश शर्मा




साहित्य केन्द्र प्रकाशन

उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशक एवं विक्रेता

ई-५/२०, कृष्णा नगर, दिल्ली-११००५१

प्रकाशक : ओ३मप्रकाश शर्मा
साहित्य केन्द्र प्रकाशन
ई 5/20 कृष्णनगर
दिल्ली-51

संस्करण · 1987

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : तरुण प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली-32

—क्या तुम भगवान को ढूंढ़ते हो? तो उसे मनुष्यों में ढूंढ़ो। अन्य पदार्थों की अपेक्षा मनुष्य के अन्दर ही देवत्व का सबसे अधिक निवास है।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

—जिसके हृदय में भक्ति-भाव रहता है, वह यदि तीर्थयात्रा करने जाता है तो उसका वह भाव और अधिक बढ़ जाता है। जिसके हृदय में भक्तिभाव है ही नहीं, उसे तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं होता।

—**स्वामी रामकृष्ण परमहंस**

लगभग 170 वर्ष पूर्व—

बंगाल से हुगली जिले में जहां वांकुड़ा और मेदिनीपुर जिले जुड़े हुए हैं, वहीं पर एक त्रिकोण में परस्पर लगे हुए श्रीपुर, कामारपुकुर और मुकुन्दपुर नामक तीन ग्राम बसे हुए हैं, हालांकि ये तीनों ग्राम अलग-अलग हैं, लेकिन बाहर से देखने पर एक ही ग्राम के तीन मोहल्ले से दीख पड़ते हैं। आसपास के ग्रामों में इन तीनों ग्रामों का एक ही नाम कामारपुकुर प्रसिद्ध है। शायद गांव के जमींदार कामारपुकुर में ही बहुत दिन रहे हों, इसलिए इन तीनों का नाम कामारपुकुर पड़ गया हो। बर्दवान के महाराजा के गुरुवंश के श्रीयुत गोपीलाल, सुखलाल इत्यादि गोस्वामी कामारपुकुर के जमींदार थे।

कामारपुकुर के पश्चिम में एक कोस पर सात वेड़े, नारायणपुर और देरे नामक तीन गांव पास-पास हैं। उस समय तीनों गांव के जमींदार रामानन्द राय थे। वे विशेष धनाढ्य तो नहीं थे, लेकिन अपनी प्रजा को बहुत कष्ट देते थे। किसी भी कारण यदि किसी से उनकी अनबन हो जाती तो वह उसका सर्वनाश कर डालते।

उस ग्राम में साधारण स्थिति का, धर्मनिष्ठ, सदाचारी, कुलीन चटर्जी नामक एक कुटुम्ब निवास करता था। इस वंश में सदैव से श्री रामचन्द्र जी की उपासना होती आई थी। चटर्जी वंश में श्री माणिकराम चटर्जी थे। जिनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी। सबसे बड़े पुत्र क्षुदिराम का जन्म लगभग सन् 1775 में हुआ था।

यौवनावस्था में क्षुदिराम बहुत सत्यनिष्ठ, संतोषी एवं त्यागी व्यक्ति थे। प्रारम्भ से ही उनमें श्री रामचन्द्र जी के प्रति अटल श्रद्धा थी। वह कभी झूठ नहीं बोलते थे, किसी को सताते नहीं थे। नित्य प्रति सन्ध्यावन्दन, श्री रामचन्द्र जी की पूजा किए बिना वह अन्न नहीं ग्रहण करते थे। शूद्रों

के घर यजमान कार्य करने वाले ब्राह्मण के यहां कभी भोजन नहीं करते थे। कन्या विक्रय करने वाले ब्राह्मण के हाथ का पानी भी नहीं पीते थे। कद में ऊंचे और दुबले-पतले मगर शक्तिवान थे। गौरवर्ण और हंसमुख थे। ऐसे निष्ठावान और सदाचार सम्पन्न होने के कारण गांव वालों की उन पर बहुत श्रद्धा थी और वे लोग उनका बड़ा आदर करते थे।

पिता की मृत्यु के बाद परिवार का सारा भार क्षुदिराम पर ही आ पड़ा। पिता की मृत्यु के पूर्व ही इनका विवाह हो गया था, पर पत्नी छोटी ही आयु में मर गई, इसलिए 24 वर्ष की अवस्था में सन् 1799 में इनका पुनः विवाह हुआ। उनकी द्वितीय पत्नी का नाम चन्द्रमणि था। घर के लोग इन्हें 'चन्द्रा' ही कहा करते थे। उनका मायका 'सराठी मायापुर' ग्राम में था। वह सुन्दर, सरलहृदया और देवता तथा ब्राह्मणों पर बहुत निष्ठा रखने वाली थीं। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह सबको प्रिय थीं। विवाह के समय उनकी आयु आठ वर्ष की थी। विवाह के छः-सात वर्ष बाद सन् 1805-06 में उनके प्रथम पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम राजकुमार रखा गया। उसके पांच-छः वर्ष बाद 1810-11 में पुत्री कात्यायनी और उसके 16 वर्ष बाद 1826-27 में द्वितीय पुत्र रामेश्वर का जन्म हुआ।

क्षुदिराम किसी भी स्थिति में न तो धर्म छोड़ने वाले थे और न असत्य बोलने वाले थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण सन् 1814 में उनके ऊपर भयंकर वज्रपात हुआ। देरे गांव का जमींदार रामानन्द राय बहुत दुष्ट स्वभाव का था। वह अपने गांव के एक व्यक्ति के ऊपर नाराज हो गया और उसके ऊपर झूठा मुकदमा दायर कर दिया। अपनी ओर से झूठी गवाही देने के लिए उसने क्षुदिराम को बुलाया। इससे क्षुदिराम बड़े धर्म-संकट में पड़ गए। वह जानते थे कि अगर जमींदार की ओर से झूठी गवाही नहीं देंगे तो जमींदार उनका सर्वनाश कर देगा, दूसरी ओर अगर वह झूठी गवाही देंगे तो उनका धर्म चला जाएगा। वह कई दिन तक गहरी दुविधा में पड़े रहे। अन्त में उन्होंने अपने अन्तःकरण की आवाज को ही प्राथमिकता दी और झूठी गवाही देने से इन्कार कर दिया। परिणाम जो होना था, वही हुआ। जमींदार ने क्षुदिराम पर झूठी नालिश कर दी और उसमें विजय प्राप्त कर क्षुदिराम की सारी सम्पत्ति नीलाम कर दी। बेचारे क्षुदि-

राम के पास गांव में रहने के लिए जगह भी नहीं रही। इस संकट के कारण सभी गांव वाले द्रवित हो उठे। किन्तु जमींदार के विरुद्ध क्षुदिराम की सहायता करने का साहस किसी में न हुआ।

इस प्रकार 40वें वर्ष में क्षुदिराम का सर्वस्व विनाश हो गया। पूर्वजों द्वारा प्राप्त एवं अपनी कमाई हुई लगभग 150 बीघा जमीन उनसे छीन ली गई। इस दारुण विपत्ति में भी वह अपनी धार्मिक निष्ठा से तिल भर भी विचलित न हुए। उन्होंने अपना एवं अपने कुटुम्ब का सारा भार श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सौंप दिया और सबको साथ लेकर देरे गांव सदा के लिए छोड़ दिया।

कामारपुकुर में सुखलाल गोस्वामी नामक सज्जन रहते थे। क्षुदिराम से इनका घनिष्ठ परिचय था। क्षुदिराम के संकट का हाल सुनते ही इन्होंने आदरपूर्वक अपने यहां बुलाया और अपने घर का एक हिस्सा खाली करके उन्हें रहने के लिए दे दिया। इस कठिन समय में इस सहायता से क्षुदिराम को बहुत सहारा मिला और श्री रामचन्द्रजी की इच्छा समझकर क्षुदिराम ने इस निमंत्रण को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया। सुखलाल गोस्वामी ने डेढ़ बीघा जमीन भी अपने मित्र क्षुदिराम को दे दी। तब से क्षुदिराम ग्राम कामारपुकुर में ही रहने लगे।

कामारपुकुर में आकर क्षुदिराम अपना अधिकांश समय ईश्वर भक्ति में ही बिताने लगे। वह लगभग वीतरागी हो गए थे और अपने आपको श्री रामचन्द्रजी के चरणों में पूर्णतया समर्पित कर दिया था। संसार में रहते हुए भी संसार से उदास वह एकदम वानप्रस्थी के समान जीवन बिताने लगे थे।

इसी समय एक ऐसी घटना घटी, जिससे उनकी धार्मिक श्रद्धा बढ़ गई। एक दिन उन्हें किसी कार्य से समीप के एक गांव में जाना पड़ा। लौटते समय वह थक गए थे, इसलिए एक वृक्ष के नीचे लेटकर विश्राम करने लगे। उनकी आंख लग गई। नींद में उन्हें एक विचित्र स्वप्न दिखाई दिया। उन्होंने देखा कि श्री रामचन्द्रजी बालरूप में उनके सामने खड़े हैं और एक ओर उंगली से इशारा करते हुए कह रहे हैं—'मैं इस जगह कितने दिनों से भूखा पड़ा हूं, मुझे अपने घर ले चल, तेरी सेवा ग्रहण करने

की मेरी बड़ी इच्छा है।' भगवान की इस महान कृपा से क्षुदिराम का हृदय एकदम गद्गद हो उठा और उनकी आंखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। तभी उनकी नींद खुल गई। वह इस अद्भुत स्वप्न पर विचार कर ही रहे थे कि तभी उनकी दृष्टि एक स्थान पर पड़ी। वह स्थान बिल्कुल वैसा ही था, जैसा उन्होंने स्वप्न में देखा था। वह तुरन्त अपनी जगह से उठ पड़े और उस जगह पहुंच गए। उन्होंने देखा कि एक सुन्दर शालिग्राम शिला पर एक काला नाग अपना फन फैलाए बैठा हुआ है। क्षुदिराम की आहट पाते ही सर्प कहीं अदृश्य हो गया। क्षुदिराम ने आगे बढ़कर वह शिला हाथ में ले ली और उसके चिह्नों को जो देखा तो वह वास्तव में रघुवीर शिला थी। यह देखकर उनके प्रसन्नता की सीमा न रही। बस शिला को वह बड़े आदर के साथ घर ले आए और प्रतिष्ठा करके नित्य उसका पूजन करने लगे।

इस प्रकार दो-तीन वर्ष बीत गए। क्षुदिराम की स्थिति धीरे-धीरे ठीक होने लगी। परिवार का भरण-पोषण भी ठीक से होने लगा, लेकिन इन दो-तीन वर्षों में उनके हृदय में शान्ति, सन्तोष और ईश्वर निर्भरता जितनी दृढ़ हुई, वैसी बहुत कम लोगों के भाग्य में होती है। मन सदैव अन्तर्मुखी रहता था, इसलिए उन्हें बीच-बीच में दिव्यदर्शन होने लगे, रोज प्रातः सायं गायत्री का ध्यान करते-करते वे ऐसे तन्मय हो जाते कि उनका वक्षस्थल आरक्त हो जाता था और मूंदे हुए नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगती थी। इन दिव्यदर्शनों से उनका हृदय सदा उत्साहपूर्ण रहा करता था और अन्तःकरण के दृढ़ विश्वास तथा भक्ति का प्रकाश मुख पर प्रकट होने के कारण उनका मुख सदैव तेजस्वी दिखाई देता था। उनकी धीर गम्भीर, शान्त और तेजस्वी मुद्रा को देखकर ग्रामवासियों के मन में उनके प्रति धीरे-धीरे बहुत भक्ति एवं श्रद्धा होने लगी और वे लोग ऋषि के समान उनका आदर करने लगे। जब रास्ते से गुजरते थे तो ग्रामवासी अपनी बातें बन्द कर देते थे और उनके सम्मान में उठ खड़े होते थे। जब वह तालाब में स्नान करते रहते तो जब तक वह स्नान न समाप्त कर देते थे, अन्य कोई तालाब में उतरता नहीं था। ग्रामवासियों का यह दृढ़ विश्वास था कि उनका आशीर्वाद कभी विफल नहीं होगा, इसीलिए

अपने सुख-दुख के अवसर पर उनसे आशीर्वाद लेते थे।

क्षुदिराम की पत्नी श्रीमती चन्द्रादेवी स्नेह और सरलता की मूर्ति थीं। उनके गुणों से प्रभावित होकर ग्रामवासी माता के समान उनका आदर करते थे। किसी पर भी संकट पड़ने पर चन्द्रा देवी यथा-शक्ति सहानुभूति और सहायता करती थीं।

क्षुदिराम की बहिन रामशीला के बड़े पुत्र रामचन्द्र मेदिनीपुर में वकालत करने लगे थे। उन्हें अपने रोजगार में धीरे-धीरे अच्छी कमाई होने लगी। वह प्रतिमास अपने मामा क्षुदिराम को 15 रुपये भेजने लगे। इससे क्षुदिराम के परिवार को बहुत सहायता मिलने लगी।

कामारपुकुर में आए क्षुदिराम को छः वर्ष हो चुके थे। रामकुमार और कात्यायनी क्रमशः 15 और 10 वर्ष के हो चुके थे। क्षुदिराम ने कात्यायनी का विवाह आनूर ग्राम के केनाराम वंद्योपाध्याय से कर दिया और केनाराम की बहन से रामकुमार का विवाह कर लिया। पास की ही पाठशाला में रामकुमार का साहित्यशास्त्र और व्याकरण का अभ्यास हुआ था और अब वह स्मृतिशास्त्र का अध्ययन कर रहा था।

तीन-चार वर्ष और बीत गए। श्री रामचन्द्रजी की कृपा से क्षुदिराम की जीवन-यात्रा ठीक तरह से चल रही थी। रामकुमार ने भी अध्ययन समाप्त कर यथाशक्ति द्रव्य उपार्जन प्रारम्भ कर दिया था। क्षुदिराम भी निश्चित मन से ईश्वर आराधना में अधिक समय बिताने लगे।

रामकुमार ने अब घर का भार सम्हाल लिया था, इसलिए क्षुदिराम तीर्थ यात्रा पर निकल पड़े। उन्होंने दक्षिण के बहुत से तीर्थों की यात्रा की और सेतुबन्ध रामेश्वर से उन्होंने एक बाणलिंग लाकर अपने पूजागृह में स्थापित किया। तीर्थयात्रा से लौटने के दो वर्ष बाद सन् 1826 में चन्द्रा-देवी को एक पुत्र हुआ। रामेश्वर की यात्रा से लौटने के बाद यह पुत्र हुआ, इसलिए क्षुदिराम ने इस पुत्र का नाम रामेश्वर रखा।

सन् 1835 में क्षुदिराम को पुनः तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई। उस समय उनकी आयु आठ वर्ष की हो गई थी। तब भी उन्होंने गया पैदल जाने का विचार किया और चल पड़े।

जब क्षुदिराम गया पहुंचे तब चैत का महीना था। एक मास वहां

रहने के बाद शास्त्रोक्त विधि से सब कर्म करके अन्त में श्री गदाधर के चरणों में पिण्डदान किया। यथाशास्त्र क्रिया करके पितृ गण से आज मुक्ति मिली, इस भावना से उन्हें बहुत संतोष मिला और ईश्वर ने उनकी सेवा स्वीकार की, यह भावना मन में आने से उनका हृदय कृतज्ञता, नम्रता और प्रेम से पूर्ण हो गया।

रात में सोते समय भी यही विचार उनके मन में घुमड़ता रहा। एक रात में उन्होंने स्वप्न देखा—मैं श्री गदाधर के चरणों में पिण्ड दान कर रहा हूं और मेरे साथ पितर दिव्य देह धारण करके उस पिण्ड को बड़े आनन्द से ग्रहण करते हुए मुझे अपना आशीर्वाद दे रहे हैं। उनके दर्शन से आनन्दित होकर मैं गद्गद हो पितरों को बारम्बार प्रणाम करता हूं। इतने में ऐसा दीखा कि एक अपूर्व ज्योति से मन्दिर भर उठा और मेरे सब पितर एक सिंहासन के किनारे से कतारों में गम्भीरतापूर्वक खड़े होकर हाथ जोड़े हुए उस सिंहासन पर बैठे हुए एक अद्भुत पुरुष की स्तुति कर रहे हैं। इतने में वह दिव्य, तेजस्वी श्याम सुन्दर पुरुष स्नेहपूर्ण दृष्टि से हंसते-हंसते मेरी ओर देखते हैं और इशारे से अपने समीप बुला रहे हैं। क्षुदिराम किसी यंत्र के समान खिंचे जाकर उनके समीप खड़े हो गए और भक्ति से भरकर श्रद्धापूर्वक उस दिव्य पुरुष को प्रणाम किया। उस दिव्य पुरुष ने मेघ के समान गम्भीर और मधुर स्वर में उनसे कहा—'क्षुदिराम ! मैं तेरी भक्ति से अत्यन्त संतुष्ट हो गया हूं। मैं तेरे घर पुत्र रूप में अवतार लेकर तेरी सेवा ग्रहण करूंगा।'

इतने में नींद उचट गई। कुछ देर तक क्षुदिराम को यही समझ में न आया कि वह कहां हैं। धीरे-धीरे उन्हें सब बातें याद आईं और ईश्वर का नाम लेते हुए वह उठ बैठे। स्वप्न के विषय में उनके हृदय में तरह-तरह के विचार उठने लगे। अन्त में उनके हृदय में यह दृढ़ निश्चय हो गया कि मेरे द्वारा किसी महापुरुष का जन्म होने वाला है और इतनी वृद्धावस्था में भी पुत्र मुखावलोकन का सुख मिलेगा।

उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि जब तक इस अद्भुत स्वप्न का फल प्रत्यक्ष न दिखाई देगा, तब तक इस सम्बन्ध में किसी से कुछ न कहेंगे।

कुछ दिन गया में और रहकर वह वैशाख मास में कामारपुकुर लौट आए।

गया से लौटने के कुछ दिन बाद क्षुदिराम को अपनी पत्नी के स्वभाव में आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई दिया और चन्द्रा किसी देवी के समान दिखाई देने लगी। उनका हृदय सांसारिकता छोड़कर सदैव उच्च अवस्था में रहने लगा। इस समय उन्हें अपनी गृहस्थी की अपेक्षा आस-पास के गरीब लोगों की गृहस्थी की चिन्ता ही अधिक रहती थी। अपने घर का कार्य करते-करते बीच ही में पड़ोसियों के यहां जाकर चीजें दे आया करती थीं। घर के सब लोगों के खाने-पीने के बाद तीसरे पहर स्वयं भोजन करने बैठती थीं। भोजन करने के पहले एक बार पुनः पड़ोसियों के यहां जरूर देख आती थीं कि उन लोगों का भोजन हुआ या नहीं और यदि किसी दिन कोई बिना खाए रहता था तो उसे सम्मानपूर्वक अपने घर लाकर भोजन कराती थीं और स्वयं थोड़े से जलपान पर ही सारा दिन बिता देती थीं।

पड़ोस के बच्चों को चन्द्रा देवी अपने ही बच्चों के समान प्यार करती थीं। क्षुदिराम को ऐसा अनुभव होने लगा कि उनकी पत्नी का वात्सल्य भाव अब देवी-देवताओं की ओर प्रवृत्त हो रहा है।

चन्द्रा देवी बहुत सरल हृदया और पूर्ण पतिव्रता नारी थीं। वह कोई भी बात या विचार अपने पति से कभी गुप्त नहीं रखती थीं।

जिस समय क्षुदिराम गया से लौटे थे उस समय जब अवसर मिलता, चन्द्रा देवी उनकी अनुपस्थिति में जो बातें घर पर हुई थीं, वही बताती रहतीं। एक दिन उन्होंने अपने पति से कहा—'आप जब चले गए तो एक रात्रि मुझे विचित्र स्वप्न दिखाई दिया। मुझे स्वप्न में दिखाई दिया कि एक दिव्य पुरुष मेरी शय्या पर सोया हुआ है ऐसा रूप मैंने किसी का भी नहीं देखा था तभी मेरी आंख खुल गई और मैंने देखा वह पुरुष अभी भी शय्या पर है। यह देखकर मुझे बड़ा डर लगा। मैंने सोचा, शायद कोई पुरुष अवसर पाकर घुस आया है। मैंने जब दीपक जलाया तो कहीं कुछ नहीं था। किवाड़ भी ज्यों के त्यों बन्द थे। कुंडी भी लगी थी। इसके बाद

रात-भर डर के कारण मुझे नींद नहीं आई। सुबह होते ही धनी लोहारिन और धर्मदास लाहा की बहिन को बुलाया और उन्हें रात की घटना बताकर पूछा। क्यों, तुम्हारे विचार में यह घटना कैसी मालूम पड़ती है? क्या सचमुच मेरे घर में कोई घुसा होगा? परन्तु मेरा तो किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं है। हां, मधुयुगी से उस दिन कुछ बातचीत हो गई थी, पर उतने से क्या वह द्वेष रखकर मेरे घर में घुसा होगा? वे दोनों मेरी हंसी उड़ाने लगीं और कहने लगीं—'तुम बुढ़ापे में पागल हो चली हो! स्वप्न देखकर इस तरह डरने की क्या बात है? दूसरे लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। गांव भर में तुम्हारे बारे में किंवदन्ती फैल जाएगी। अब ये बात किसी से मत कहना। उनकी बात सुनकर मुझे विश्वास हुआ कि वह स्वप्न ही था और तब मैंने यह बात किसी से न कहने का निश्चय कर लिया।

'और एक दिन मैं धनी के साथ बात करती हुई अपने घर के सामने वाले शिव मन्दिर के आगे खड़ी थी। इतने में मुझे ऐसा दिखाई दिया कि महादेव के शरीर से एक दिव्य ज्योति निकलकर सारे मंदिर में फैल गई है और वायु के समान तरंगाकार होकर मेरी ओर वेग से बढ़ी आ रही है। आश्चर्य से स्तब्ध होकर मैं उस ज्योति को धनी को दिखा ही रही थी, तभी वह ज्योति मेरे पास आई और मेरे शरीर में प्रविष्ट हो गई। भय और विस्मय से मैं एकदम मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। धनी ने मेरे सिर पर पानी डाला जब मुझे होश आया तो मैंने उसे सारी बातें बताईं। उसे भी अचम्भा हुआ और वह बोली, तुझे वात रोग हो गया है। लेकिन उस दिन से मुझे ऐसा मालूम होता है, जैसे वह ज्योति मेरे उदर में समा गई है और मेरे उदर में गर्भ संचार हो गया है। यह बात भी मैंने धनी और प्रसन्न को बता दी। उन्होंने प्रत्युत्तर में मुझे पागल, मूर्ख और न जाने क्या-क्या अपशब्द कहे और कहा कि तुझे भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ है। तेरे पेट में वायुगुल्म हो गया है। चेतावनी दी कि यह बात किसी से कहना मत। उसकी बातें छोड़ो। आप क्या समझते हैं? मुझे रोग हो गया है या देव की कृपा मुझ पर हुई है। मुझे तो अभी तक यहीं मालूम होता है कि मेरे उदर में गर्भ संचार हो गया है।

क्षुदिराम ने पत्नी की सारी बातें धैर्यपूर्वक सुनीं, साथ ही उन्हें गया में

देखे हुए अपने स्वप्न का भी स्मरण हुआ। वह अपनी पत्नी को समझाते हुए कहने लगे—'यह रोग नहीं है। तुझ पर देव की कृपा हुई है। परन्तु इसके बाद यदि मुझे इस तरह का कुछ दीखे तो मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे से कुछ नहीं बताना। श्री रघुवीर कृपा करके जो भी दिखाएं उसमें अपना कल्याण होगा, ऐसा ध्यान रखना। गया में रहते समय मुझे भी स्वप्न में ईश्वर ने बताया था कि हमें शीघ्र ही पुत्र मुख देखने को मिलेगा।'

इस आश्वासन से चन्द्रादेवी निश्चिंत हो गईं। इसके बाद तीन-चार मास और बीत गए और सभी ने अनुभव किया कि क्षुदिराम की पत्नी 45 वर्ष की अवस्था में सचमुच पुनः गर्भवती हुई। गर्भिणी स्त्रियों का रूप-लावण्य बहुत बढ़ जाता है। चन्द्रा देवी के साथ ऐसा ही हुआ। उनकी पड़ोसिनें कहा करती थीं, इस समय चन्द्रा देवी के शरीर में असामान्य तेज बढ़ गया है। कोई-कोई स्त्री कहती—'बुढ़ापे में गर्भवती होकर इसके शरीर में इतना तेज आना अच्छा चिह्न नहीं है। मालूम होता है, प्रसव होने पर यह बुढ़िया मर जाएगी।'

गर्भावस्था में चन्द्रा देवी को दिव्य दर्शन तथा अनुभव और अधिक होने लगे उन्हें प्रतिदिन देवी-देवताओं के दर्शन होने लगे थे। कभी उन्हें ऐसा अनुभव होता कि उनके शरीर की सुगन्ध घर-भर में फैल गई है। कभी मालूम होता देवता उनसे बोल रहे हैं। उन्हें जो कुछ दीखता या सुन पड़ता उसे वह अपने पति को बताया करती थीं और पूछती थीं—'मुझे ऐसा क्यों होता है?' क्षुदिराम उन्हें तरह-तरह से समझाते थे और कहा करते थे, चिन्ता की कोई बात नहीं है। इसी तरह नित्य होने लगा।

एक दिन चन्द्रा देवी भयभीत होकर अपने पति से बोलीं—'शिव मन्दिर की ज्योति के दर्शन के समय से बीच-बीच में मुझे इतने देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं कि मैं बता नहीं सकती। इनमें से कितने देवताओं को तो मैंने चित्रों में भी कभी नहीं देखा। आज ही दोपहर की बात है— 'मुझे ऐसा दीखा कि कोई हंस पर बैठा आ रहा है, उसे देखकर मुझे डर लगा। उसका मुख धूप के कारण लाल हो रहा था। यह देखकर मुझे उसके ऊपर दया आ गई। मैं उसे पुकारकर बोली, ओ बेचारे हंस पर बैठने वाले देव! धूप की गर्मी से तेरा मुंह कितना झुलस गया है। घर कुछ

दलिया है, क्या मैं तुझे ला दूं ? उसे पीकर थोड़ा शान्त हो जा।' यह सुनकर वह हंसा और अचानक वायु में मिलकर अदृश्य हो गया। ऐसे एक-दो नहीं, कितने देवताओं की बात सुनाऊं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि पूजा या ध्यान करते समय ही यह देव मुझे दिखाई देते हों—किसी भी समय यह दिखाई पड़ जाते हैं। इस तरह के ये रूप क्यों दिखाई पड़ जाते हैं ? मुझे कोई रोग तो नहीं हो गया है ? कहीं भूत-बाधा तो नहीं हुई है ?'

क्षुदिराम ने पुनः अनेक प्रकार की बातें बताकर उनको सांत्वना दी और समझाया कि तेरे उदर में बसने वाले महापुरुष के पवित्र स्पर्श से ही तुझे ये सब रूप दीखते हैं।

ऋतुओं का चक्र चलता रहा और अन्त में ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ। शीत और ग्रीष्म ऋतुओं का मधुर संगम—'फाल्गुन मास, चर-अचर, सभी में नव जीवन का संचार कर रहा था। फाल्गुन मास के छः दिन बीत चुके थे।

श्रीमती चन्द्रादेवी श्री रामचन्द्र जी के भोग के लिए सामग्री बना रही थीं। प्रसव का समय अब निकट था। आज चन्द्रादेवी में अतीव उत्साह एवं प्रसन्नता भरी हुई थी। लेकिन जाने क्यों शरीर में थकावट भी बहुत थी। अचानक उनके मन में विचार आया कि यदि मुझे इसी समय प्रसव हो गया तो भगवान के भोग का क्या होगा ? घर में दूसरा कोई नहीं है।'

क्षुदिराम से जब उन्होंने अपनी यह शंका प्रगट की तो उन्होंने समझाते हुए कहा—'डरो नहीं ! जिस महापुरुष का आगमन तुम्हारे उदर में हुआ है, वह कभी भी इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी की पूजा-सेवा में विघ्न डालते हुए संसार में प्रवेश नहीं करेगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है, इसलिए आज की चिन्ता मत करो। कल से मैं इसका दूसरा प्रबन्ध करूंगा और धनी को यहां सोने के लिए मैंने पहले ही से कह रखा है।'

इस तरह पति के आश्वासन से चन्द्रा देवी की शंका हट गई और वह अपने काम में लग गई।

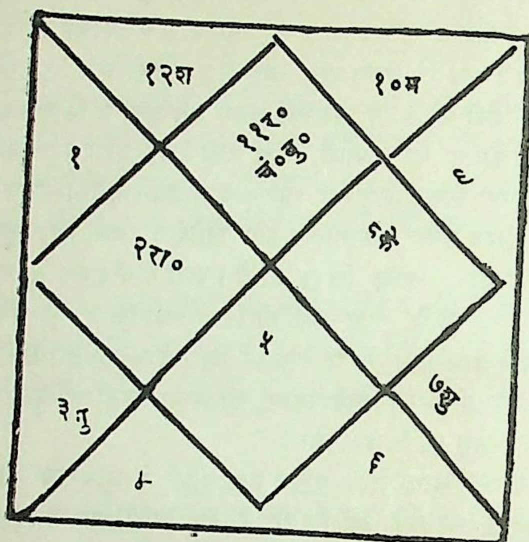
दिन सकुशल बीत गया। रात्रि आई। धनी लुहारिन चन्द्रा देवी के पास ही सोई थी। धीरे-धीरे उषाकाल आ गया और चन्द्रादेवी को प्रसव वेदना आरम्भ हुई। कुछ ही समय बाद उन्हें प्रसव हुआ और पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। चन्द्रा देवी की सारी व्यवस्था करके जब धनी ने शिशु की ओर देखा तो उसे उस स्थान पर न पाया, जहाँ उसे रखा था। वह एकदम घबरा गई और दीपक लेकर शिशु को इधर-उधर देखने लगी। उसने देखा नवजात शिशु नाल समेत सरकते-सरकते रसोई के पास जा पहुंचा है और उसके शरीर पर खूब राख लिपट गई है। धनी ने दौड़कर बालक को उठा लिया। उसने जल्दी से राख साफ की। तब देखा कि नवजात शिशु अत्यन्त सुन्दर है और डील-डौल में छः मास के शिशु की तरह है। धनी लोहारिन को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने पड़ोस की अन्य स्त्रियों को बुलाकर वृतान्त बताया और शिशु को दिखा दिया।

इस प्रकार शान्त और पवित्र ब्रह्म मुहूर्त में क्षुदिराम की छोटी-सी कुटिया में 17 फरवरी सन् 1836 में इस अलौकिक महापुरुष का जन्म हुआ।

क्षुदिराम ने ज्योतिषी से बालक की जन्मकुण्डली बनवाई, जो इस प्रकार है—

शक 1757 फाल्गुन शुक्ल द्वितीया बुधवार सन् 1836 ता० 17 को आधी घड़ी रात रहते बालक का जन्म हुआ। उस समय पूर्ण भाद्रपदा नक्षत्र का प्रथम चरण था। जन्म लग्न में रवि, चन्द्र और बुध थे और शुक्र, मंगल और शनि उच्च स्थान में पड़े थे। उच्च ग्रहों पर गुरु की दृष्टि थी। जन्म कुम्भ लग्न के प्रथम नवांश में हुआ। सूर्योदय से इष्टकाल 59 घटिका 28 पल था।

जन्म कुण्डली



जन्मराशि—कुम्भ
जन्म नक्षत्र—पूर्वी भाद्रपदा प्रथम चरण
जन्म काल या) सूर्योदय से
इष्ट काल) 59 घ० 28 प०
जन्म लग्न—कुम्भ—प्रथम नवांश

शुभ मस्तु

इस जन्मलग्न का फल भृगुसंहिता में इस प्रकार लिखा है—

धर्मस्थानाधिपे तुंगे धर्मस्थे तुंगरवेचरे
गुरुण दृष्टि संयोगे लग्नेशे धर्मसंस्थिते।
केन्द्र स्थानगते सौभ्ये गुरौं चैव तू कोणामे
स्थिर लग्ने यदा जन्म सम्प्रदायप्रभुर्हि सः।
धर्मविन्माननीयस्तु पुण्यकर्मरतः सदा
देवमन्दिरवासी च बहुशिष्य समन्वितः।
महापुरुषसंज्ञोऽयं नारायणांशसम्भवः
सर्वत्र जनपूज्यश्च भविष्यति न संशयः।

'ऐसा व्यक्ति धर्मावित, माननीय और पुण्य कर्मों में रत होता है। वह नया धर्म सम्प्रदाय शुरू करेगा और उसे अवतारी पुरुष मानकर सर्वत्र उसकी पूजा होगी।'

गया में देखे स्वप्न को इस तरह सत्य होते देखकर क्षुदिराम को बहुत आनन्द तथा आश्चर्य हुआ और उनका हृदय भक्ति तथा कृतज्ञता से भर उठा। गया में स्वप्न में गदाधर ने कृपा की, जिससे यह पुत्र हुआ, इसलिए क्षुदिराम ने इस बालक का नाम गदाधर रखा।

चन्द्रा देवी को पुत्र होने का समाचार मेदिनीपुर में रामचन्द्र को ज्ञात हुआ। अपने मामा की आर्थिक स्थिति रामचन्द्र को मालूम थी, इसलिए नवजात शिशु के दूध पीने के लिए उन्होंने तुरन्त एक दूध देती गाय कामारपुकुर भेज दी। इसी प्रकार बालक के लिए सभी वस्तुओं का प्रवन्ध अपने आप हो गया।

बालक दिनोंदिन बड़ा होता गया और उसकी आकर्षण शक्ति भी बढ़ती गई। अड़ोस-पड़ोस के सभी लोगों का विशेषकर नारी समाज का वह बालक जीवन-प्राण बन गया। जरा भी फुर्सत मिलने पर स्त्रियाँ चन्द्रा देवी के यहाँ चली जातीं और बालक को खिलाकर सुख पातीं।

एक दिन की बात है। तब गदाधर की अवस्था सात-आठ मास की थी। माता ने उसे दूध पिलाकर सुला दिया था और अपने काम-काज में लग गई थीं। थोड़ी देर बाद जब वह पुनः उस जगह आई तो उन्होंने देखा, वहां गदाधर नहीं है। उसकी जगह कोई अपरिचित दीर्घाकार मनुष्य सोया हुआ है। यह देखकर चन्द्रा देवी भयभीत हो गई और अपने पति को बुलाने के लिए चिल्लाती हुई दौड़ पड़ीं। क्षुदिराम जब चन्द्रा देवी के साथ भागते हुए उस कमरे में आए तो देखा, वहां कोई नहीं है। गदाधर आराम से सोया हुआ है। लेकिन चन्द्रा देवी का भय दूर नहीं हुआ। वह पति से बोली—'तुम कुछ भी कहो मैंने तो अपनी आंखों से उस मनुष्य को देखा है। तुम किसी पंडित को बुलाकर शान्ति कराओ।' क्षुदिराम ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—'डरो मत! इस बालक के सम्बन्ध में आज तक जो बहुतेरी विचित्र

बातें हुई हैं, उसी तरह की इसे भी समझो। विश्वास रखो, यहाँ साक्षात श्री रामचन्द्रजी पूजाघर में विद्यमान हैं। बालक का अनिष्ट कदापि नहीं हो सकता।' पति के आश्वासन से चन्द्रा देवी कुछ शान्त हुई।

इस प्रकार चार-पांच वर्ष बीत गए। इस बीच एक उल्लेखनीय बात और हुई। सन् 1839 में चन्द्रा देवी को सर्वमंगला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई।

गदाधर की अपूर्व स्मरणशक्ति और बुद्धिमत्ता का परिचय क्षुदिराम को धीरे-धीरे होने लगा। जो बात बालक गदाधर एक बार सुन लेता था वह उसे याद हो जाया करती थी। उससे दोबारा वही बात पूछने से उसका अधिकांश भाग वह ठीक-ठीक बोल दिया करता था।

लेकिन इन दिनों गदाधर अधिक उपद्रव करने लगा था। इस कारण क्षुदिराम ने जल्दी ही उसे पाठशाला में भरती करा दिया। गदाधर को भी समान उम्र के साथी मिलने से बहुत प्रसन्नता हुई। धीरे-धीरे उसके साथी और शिक्षक उससे बहुत प्रेम करने लगे।

गदाधर के सम्बन्ध में क्षुदिराम को एक बात से बहुत चिन्ता थी। कोई भी काम क्यों किया जाए अथवा क्यों न किया जाए, जब तक इसका सन्तोषजनक कारण गदाधर को नहीं बता दिया जाता था, तब तक वह वही काम करता जो उसके मन को ठीक मालूम होता। क्षुदिराम सोचते थे, हर बात का कारण समझने की बालक की इच्छा ठीक ही है, किन्तु प्रत्येक बात का कारण इसे इसके ही ढंग से कौन समझाएगा ? यही चिन्ता क्षुदिराम को हमेशा सताती रहती थी।

क्षुदिराम के घर के ही निकट हालदारपुकुर नाम का एक बड़ा-सा तालाब था। उस तालाब में ग्राम के सारे स्त्री-पुरुष स्नान किया करते थे। इसमें पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग-अलग दो घाट बने हुए थे। गदाधर के समान छोटे बालक स्त्रियों के घाट पर ही नहाते थे।

एक बार गदाधर अपने दो-चार साथियों को लेकर स्त्रियों के घाट पर नहा रहा था। सभी बालक वहां पानी में कूद-कूद कर एक-दूसरे की ओर पानी उछालने लगे। इस तरह उन लोगों ने बड़ी गड़बड़ी मचा दी। स्त्रियों को इससे कुछ कष्ट हुआ और उनके शरीर पर पानी पड़ जाने के कारण

उन्हें क्रोध भी आया। उनमें से एक स्त्री बोल उठी—'क्यों रे छोकरो! तुम लोग इस घाट पर क्यों आए? उधर पुरुषों के घाट पर जाकर उपद्रव मचाओ। यहां हम साड़ी और कपड़े धोती हैं। जानते नहीं, स्त्रियों को विवस्त्र देखना मना है?' इस पर गदाधर पूछ उठा—'क्यों मना है?' अब वह स्त्री बेचारी क्या उत्तर देती। उसे गदाधर पर और क्रोध आया। औरतों को क्रोधित देखकर अन्य बालक तो वहां से भाग गए, किन्तु गदाधर ने कुछ दूसरा ही कार्यक्रम मन में स्थिर कर लिया। वह लगातार तीन दिनों तक उन स्त्रियों के घाट पर जाता रहा और एक वृक्ष की ओट में छिपकर स्नान करती स्त्रियों को ध्यानपूर्वक देखने लगा। तीसरे दिन उस स्त्री से भेंट होते ही गदाधर उससे बोला—'काकी, परसों मैंने चार स्त्रियों की ओर उन्हें स्नान करते समय देखा, कल छः की ओर और आज तो आठ की ओर देखा, पर मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ।' वह स्त्री गदाधर को लेकर चन्द्रा देवी के पास आई और हंसते हुए पूरी बात बता दी। यह सुनकर चन्द्रा देवी बोली—'बेटा, यह बात तो सही है कि ऐसा करने पर स्त्रियाँ अपना अपमान समझती हैं। उनको तो तू मेरे ही समान मानता है न? तब क्या उनका अपमान मेरा अपमान नहीं है? तो फिर उनके और मेरे मन में दुख पहुंचाना क्या अच्छा है?'

माता का यह मधुर उपदेश गदाधर के हृदय में जम गया और उस दिन से फिर उसने ऐसा कोई काम न किया।

गदाधर बड़ा साहसी और निडर था। बड़े-बड़े मनुष्य भी भूत के भय से जहां जाने में हिचकते थे, वहां वह निस्संकोच चला जाता था। उसकी बुआ के ऊपर शीतला देवी आया करती थी। एक बार जब वह कामारपुकुर आई थीं, तभी उन पर देवी आ गई। उसका हाथ-पैर पटकना और बड़-बड़ाना देखकर घर के सब लोग घबड़ा उठे। किन्तु गदाधर निर्भयतापूर्वक अपनी बुआ के पास चला गया और उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने के बाद अपनी मां से कहने लगा, 'बुआ के शरीर में जैसी देवी आई हैं, वैसी ही मेरे शरीर में आए तो क्या ही मजा हो।'

गदाधर अब सात वर्ष का हो गया था। वह अपने मधुर स्वभाव, आनन्दी प्रवृत्ति इत्यादि गुणों से सबका बहुत प्रिय हो गया था। आस-पास

की स्त्रियां यदि किसी दिन कोई विशेष खाद्य तैयार करतीं तो उसमें से गदाधर को अवश्य देतीं। गदाधर के समवयस्क बालकों को यदि कुछ खाने को मिलता था तो वे भी अपने हिस्से में से गदाधर को अवश्य देते थे।

ईश्वर की कृपा से गदाधर का शरीर मजबूत और गठीला था, इसीलिए वह नीरोग रहता था। उसका स्वाभाविक एकाग्रचित्त किसी विषय की ओर खिंच जाने पर वह इतना तन्मय हो जाता कि उसे शरीर की बिल्कुल सुधि ही न रहती थी। शुद्ध पवन से लहराते हुए हरे-भरे खेत, नदी का शान्त, गम्भीर, स्वच्छ जल प्रवाह, पक्षियों का मधुर कलरव, विशेषकर नीला आकाश और उसमें क्षण-क्षण में रूप बदलने वाली मेघमाला इत्यादि दृश्यों में से किसी एक का भी प्रतिबिम्ब उसके शुद्ध मन पर पड़ते ही वह एकदम बेहोश हो जाता था और उसका मन कल्पनाओं के देश में पहुंच जाता था।

एक बार गदाधर किसी खेत की मेड़ से जा रहा था। उस समय आकाश से एक बिल्कुल काला बादल गुजर रहा था और उस बादल के पास दूध के समान सफेद बगुले उड़ते जा रहे थे। इस दृश्य को देखकर वह इतना तन्मय हो गया कि अचानक बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा। सिर पर पानी डाले जाने से वह बहुत देर बाद होश में आया।

ऐसी घटनाओं के कारण गदाधर के माता-पिता और अन्य लोगों को चिन्ता होने लगी। यह रोग स्थायी न हो जाय, इसलिए गदाधर को दवा इत्यादि दी जाने लगी, साथ ही शान्ति कराना शुरू किया। गदाधर कहता, 'मुझे आने वाली मूर्छा किसी रोगवश नहीं है वरन इस स्थिति में मुझे अत्यन्त आनन्द का अनुभव होता है।' लोगों ने देखा है कि इस प्रकार की मूर्छा से गदाधर के स्वास्थ्य के ऊपर किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती है, इसलिए सभी की चिन्ता कम हो गई।

इसी प्रकार गदाधर का सातवां वर्ष आधे से अधिक बीत गया। 1843 का शरद आ पहुंचा। क्षुदिराम के भानजे रामचन्द्र वर्षभर मेदिनीपुर ही रहते थे, किन्तु शरदोत्सव अपने पूर्वजों के निवास-स्थान सेलामपुर जाकर बड़ी धूमधाम से मनाते थे। इस वर्ष के उत्सव में उन्होंने अपने मामा क्षुदिराम को भी निमंत्रित किया था। क्षुदिराम का 68वां वर्ष चल रहा

था। कुछ दिन पहले उन्हें संग्रहणी हो चुकी थी, इस समय उन्हें जाना चाहिए या नहीं ? अन्त में उन्होंने सोचा, उनकी जैसी अवस्था है, उसमें कोई ठिकाना नहीं कि अगला वर्ष देख भी पायें या नहीं। इसलिए उन्होंने जाने का ही निश्चय किया।

सेलामपुर पहुंचने पर दो दिन बाद उनको रोग पुनः उमड़ पड़ा। रामचन्द्र ने चिकित्सा कराई। षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी तीन दिन किसी तरह बीते। नवमी के दिन रोग बहुत बढ़ गया। सारी रात लोगों ने जागकर व्यतीत की। विजयदशमी का प्रभात हुआ। क्षुदिराम आज इतने कमजोर हो गये थे कि उनसे एक शब्द भी बोलते नहीं बन रहा था। रामचन्द्र जान गए कि अब मामा का अन्त समय निकट आ गया है। क्षुदिराम को निश्चेष्ट पड़े देखकर उनकी आंखें डबडबा आईं और वह भरे गले से बोले—'मामा ! आप सदैव 'रघुवीर' 'रघुवीर' जपा करते हैं, पर अभी ऐसे क्यों पड़े हैं ?' 'रघुवीर' नाम सुनते ही क्षुदिराम होश में आ गए और धीमे कम्पित स्वर में बोले—'कौन रामचन्द्र ! क्या प्रतिमा विसर्जन कर आए ? अच्छा तो ठीक है। मुझे एक बार उठाकर बैठाओ तो सही।'

ज्योंही रामचन्द्र, हेमांगिनी और रामकुमार ने मिलकर उन्हें हल्के हाथों से उठाकर बैठा दिया, त्योंही क्षुदिराम ने गम्भीर स्वर में तीन बार 'रघुबीर' नाम उच्चारण करके प्राण त्याग दिए। क्षुदिराम की नश्वर देह को नदी-तट पर ले जाकर अग्नि संस्कार किया।

ज्योंही दूसरे दिन यह दुखद समाचार कामारपुकुर में क्षुदिराम के घर पहुंचा, वहां हाहाकार मच गया।

क्षुदिराम की मृत्यु से उनकी गृहस्थी उजड़ गई। श्रीमती चन्द्रा देवी ने अपने पति के साथ जीवन के 43 वर्ष व्यतीत किए थे। इस दारुण दुख ने उन्हें पागल-सा कर दिया और उन्हें संसार शून्य प्रतीत होने लगा। श्री रामचन्द्र जी के चरणों का निरन्तर ध्यान करने वाला उनका मन अब संसार को त्यागकर सदा वहीं रहने के लिए छटपटाने लगा। लेकिन सात वर्ष के गदाधर और चार वर्ष की मंगला ने उन्हें संसार के साथ बांधने को

विवश कर दिया, अतः श्री रामचन्द्रजी के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण करके अपने दोनों छोटे बच्चों की ओर देखकर पतिनिधन का दारुण दुख किसी तरह भूलने का प्रयत्न करती हुई वे अपने दिन काटने लगीं।

रामकुमार ज्येष्ठ पुत्र थे। गृहस्थी का सब भार अब उन्हीं के ऊपर आ पड़ा और वह पूरी शक्ति से गृहस्थी की गाड़ी खींचने लगे।

पितृ वियोग से गदाधर को हार्दिक दुख हुआ। परन्तु उसकी बुद्धि इस छोटी अवस्था में भी अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक परिपक्व थी। उसने सोचा कि अगर वह अपना दुख प्रगट करेगा तो मां और भी दुखी होगी, इसीलिए उसने अपने मन का दुख प्रगट न होने दिया। सभी यह समझते थे कि गदाधर पहले की ही तरह आनन्द से दिन बिता रहा है। वह अक्सर गांव के पास ही 'भूतों के श्मशान' 'माणिकराज की अमराई' इत्यादि जन शून्य स्थानों में जाकर टहला करता था। लेकिन उसे यों अकेला घूमते देखकर भी किसी को किसी तरह की शंका नहीं होती थी। वे लोग समझते थे कि लड़का नटखट है। यों ही घूमता हुआ चला आया होगा। वास्तव में पिता की मृत्यु के बाद गदाधर का स्वभाव एकांतप्रिय और लगनशील बन गया था।

गदाधर के मन में अपनी माता के प्रति अब और अधिक प्रेम उत्पन्न हो गया था। वह अब पहले की अपेक्षा अधिक समय अपनी माता के समीप ही व्यतीत करता था और पूजा तथा घर के अन्य कामों में उन्हें उत्साह-पूर्वक मदद देता था। वह समझ गया था कि उसके पास रहने से उसकी माता अपना दुख भूली रहती हैं। पिता की मृत्यु के बाद वह अपनी माता से कभी भी किसी बात के लिए हठ नहीं करता था।

गदाधर अब पूर्ववत पाठशाला जाने लगा, किन्तु पाठशाला जाने की अपेक्षा पुराण-भजन सुनने और देवी-देवताओं की मूर्ति बनाने में उसका ध्यान अधिक लगता था। इस समय उसका ध्यान एक विशेष बात की ओर आर्कषित था। गांव के आग्नेय में जगन्नाथपुरी जाने की राह में गांव के जमींदार लाल बाबू की धर्मशाला थी। वहां जगन्नाथपुरी जाने वाले साधु वैरागी ठहरते थे और गांव में भिक्षा मांगते थे। गांव में पुराण सुनते समय, गदाधर ने सुना था, संसार अनित्य है और पिता की मृत्यु से इस बात का

प्रत्यक्ष ज्ञान उसके शुद्ध और कोमल मन पर उत्पन्न हो गया था। साथ ही उसने यह भी सुना था कि साधु वैरागी इस अनित्य संसार को छोड़कर श्री भगवान के दर्शनार्थ उनकी सेवा में ही समय बिताते हैं और ऐसे साधुओं की संगति से मनुष्य शान्ति प्राप्त कर कृतार्थ होता है, इसलिए ऐसे साधुओं से परिचय प्राप्त करने की इच्छा से वह कभी-कभी धर्मशाला जाया करता था। प्रातः सायं धूनी में अग्नि प्रज्वलित करके वे भगवत चिन्तन में किस तरह निमग्न हो जाते हैं, जो भिक्षा मिलती है, उसे वे प्रथम इष्ट देवता को समर्पण करके तत्पश्चात आनन्द से उसे प्रसाद जानकर कैसे ग्रहण करते हैं, बीमार पड़ने पर वे भगवान पर सारा भार सौंपकर बीमारी के दुख को किस तरह शान्ति के साथ सहन करते हैं, उसी में कैसे प्रसन्न रहते हैं, इत्यादि बातें इस बुद्धिमान बालक की तीक्ष्ण दृष्टि से नहीं बची क्रमशः गदाधर ने साधु वैरागियों की छोटी-मोटी सेवा करना, उनके लिए लकड़ी इत्यादि ला देना, उनका स्थान झाड़-बुहार देना शुरू किया और उनके साथ मिलकर भी रहने लगा। उन साधु वैरागियों को भी इस सुन्दर बालक के मधुर आचरण को देखकर आनन्द मिलता था और वे लोग उसे अनेक प्रकार के दोहे-गीत, भजन सिखाते थे, कथाएँ सुनाते थे, उपदेश देते थे और अपने भिक्षाटन में थोड़ा-सा प्रसाद भी खाने को देते थे।

गदाधर जब आठ वर्ष का था तो ऐसे ही कुछ साधु उस धर्मशाला में बहुत दिनों तक ठहरे थे। गदाधर उन्हीं में मिलकर रहने लगा और शीघ्र ही उनका कृपापात्र बन गया। प्रारम्भ में तो इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब वह दिन-भर में कई बार वहां जाने लगा तो यह बात सब को मालूम हो गई। किसी दिन साधु लोग जब उसे कुछ खाने को दे देते तो वह घर आकर मां को सब बातें बताता और कहता मुझे भूख नहीं है। पहले तो इसे साधुओं की कृपा समझकर माता को किसी प्रकार की चिन्ता न हुई, परन्तु किसी-किसी दिन अपने सर्वांग में विभूति रमाकर या किसी दिन टीका लगाकर अथवा किसी दिन साधुओं-सी लंगोटी बांधकर घर जाकर वह माता से कहता—'देखो मां। मुझे साधुओं ने कैसा सुन्दर सजा दिया है।' इन बातों से चन्द्रा देवी को चिन्ता हुई। वह सोचने लगीं,

'ये साधु-फकीर मेरे गदाधर को फंसाकर कहीं ले तो नहीं जायेंगे ?' एक दिन गदाधर के घर लौटने पर माता का हृदय भर आया और पुत्र गदाधर को हृदय से लगाकर आंखों से आंसू बहाती हुई कहने लगीं, 'बेटा संभलकर चलना भला ! कहीं ऐसा न हो कि वे लोग तुझे फंसा ले जायें।' गदाधर ने अपनी ओर से माता के इस भय का निवारण किया, पर माता के मन का संशय दूर नहीं हुआ। तब अपने कारण माता को दुखी होते देखकर वह बोला, 'अच्छा मां, आज मैं वहां जाऊंगा ही नहीं, तब तो ठीक होगा न ?' यह सुनकर चन्द्रा देवी को सांत्वना मिली और उनके मन का भय दूर हुआ।

उस दिन संध्या समय धर्मशाला में जाकर गदाधर ने सब साधुओं से कह दिया, आज से मैं आप लोगों की सेवा करने नहीं आऊंगा। इसका कारण पूछने पर सारी बात उसने स्पष्ट रूप से बता दी। यह सुनकर गदाधर के साथ ही वे साधु लोग उसके घर आए और चन्द्रा देवी को आश्वासन देकर बोले, 'बालक को इस तरह फंसा कर ले जाने का विचार कभी हमारे मन में भी नहीं आया और हम ऐसा कभी नहीं करेंगे। हम लोग संन्यासी-फकीर हैं। हम बिना कारण किसी अल्पवयस्क बालक को उसके माता-पिता की अनुमति के बिना कैसे ले जायेंगे ? ऐसा करना तो घोर पाप है, अतः इस विषय में निश्चिन्त रहो।' यह सुनकर चन्द्रादेवी का सारा संशय बिल्कुल दूर हो गया और साधु लोगों की इच्छा के अनुसार गदाधर को उनके पास आने-जाने की माता ने पुनः अनुमति दे दी।

लगभग इसी अवधि में एक और घटना हुई, जिससे चन्द्रा देवी को गदाधर के विषय में चिन्ता होने लगी। कामारपुकुर से एक मील पर आनूर गांव है। वहां श्री विशालाक्षी देवी का जागृत स्थान है। एक दिन गांव की बहुत-सी स्त्रियां कोई मानता पूरी करने के लिए देवी के मन्दिर में जा रही थीं। उन्हीं में धर्मदास लाहा की विधवा बहिन प्रसन्न भी थी। स्त्रियों को जाते देखकर गदाधर बोला—'मैं भी चलूंगा।' स्त्रियों ने पहले तो तरह-तरह से समझाया कि रास्ता दूर का है, तू थक जाएगा, लेकिन जब गदाधर न माना तो उसे साथ ले लिया। गदाधर को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह देवी-देवताओं का भजन गाते हुए साथ-साथ चलने लगा।

गदाधर गाता हुआ चला जा रहा था कि अचानक उसकी आवाज रुक गई, आंखों से अश्रुधारा बहने लगी और वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। बेचारी स्त्रियां एकदम घबरा गईं और गदाधर को होश में लाने के लिए तरह-तरह के उपचार करने लगीं। तभी प्रसन्न के मन में आया कि कहीं गदाधर के शरीर में देवी ने तो नहीं प्रवेश किया है? उसने स्त्रियों से देवी के गीत गाने को कहा। स्त्रियों ने प्रसन्न का कहा मानकर देवी की प्रार्थना शुरू की और क्षण मात्र में गदाधर सजग होकर उठ बैठा। उसके शरीर में कमजोरी या थकावट के कोई चिह्न नहीं थे। यह देखकर स्त्रियों को विश्वास हो गया कि गदाधर के शरीर में देवी का प्रवेश हुआ था।

देवी दर्शन से लौटकर स्त्रियों ने सारी बातें चन्द्रा देवी को बताईं। इसे सुनकर चन्द्रा देवी को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने गदाधर की कुदृष्टि उतारकर श्री रघुवीर और विशालाक्षी देवी की अपने पुत्र के कल्याणार्थ पुनः प्रार्थना की।

डेढ़ वर्ष और बीता। गदाधर धीरे-धीरे अपने पिता की स्मृति भूलने लगा। धर्मदास लाहा के पुत्र गया विष्णु के साथ इस समय गदाधर की बहुत मित्रता हो गई थी। दोनों सदा साथ-साथ रहते। इन लोगों का प्रेम देखकर धर्मदास और गदाधर के घरवालों को बड़ा आनन्द आता।

गदाधर का नौवां वर्ष समाप्त होते देखकर रामकुमार ने उसका उपनयन करने का निश्चय किया। धनी लोहारिन ने गदाधर से एक बार यह मांगा था कि यज्ञोपवीत के समय तू प्रथम भिक्षा मुझसे ही लेना। गदाधर ने यह बात स्वीकार कर ली थी। उपनयन से कुछ दिन पूर्व धनी से की गई प्रतिज्ञा की बात गदाधर ने रामकुमार को बताई। परन्तु उसके कुल में ऐसी प्रथा न होने के कारण रामकुमार चिन्ता में पड़ गया। उधर गदाधर ने भी हठ पकड़ ली। अन्त में धर्मदास लाहा के समझाने पर रामकुमार को गदाधर की बात माननी पड़ी।

उपनयन होने पर गदाधर को देवपूजा का अधिकार प्राप्त हो गया। एक तो पहले ही से उसका हृदय भक्तिपूर्ण था, अब तो वह अपना अधिक समय पूजा-पाठ में ही बिताने लगा। पवित्र हृदय के गदाधर पर देवताओं ने कृपा की जिससे बीच-बीच में उसे भाव-समाधि होने लगी और दिव्य

दर्शन प्राप्त होने लगे।

उसी वर्ष महा शिवरात्रि के दिन गदाधर ने उपवास किया और यथा-विधि महादेव की पूजा-अर्चना की। उसके साथी गया विष्णु ने भी ऐसा ही किया और रात को सीतानाथ पाईन के घर होने वाले शिवचरित्र नाटक देखकर जागरण करने का निश्चय किया। प्रथम पहर की पूजा समाप्त करके गदाधर शिव के ध्यान में मग्न बैठा था, तभी उसके नाटक के कुछ मित्र आकर कहने लगे, 'शंकर का अभिनय करने वाला लड़का अचानक बीमार हो गया है, इसलिए उसके स्थान पर आज तुम्हें वह काम करना होगा।' गदाधर ने उत्तर दिया, 'इससे पूजा में विघ्न होगा, इसलिए मैं यह काम नहीं कर सकता।' साथी लोगों ने समझाया, 'शिव का अभिनय करने से तेरे हृदय में शिव के ही विचार दौड़ते रहेंगे। यह काम क्या पूजा से कम है ? जरा यह तो सोच कि अगर आज तूने यह काम नहीं किया तो लोगों के दिल में कितनी उदासी होगी।' उन लोगों का ऐसा आग्रह देखकर गदाधर राजी हो गया।

नाटक का समय आया। गदाधर को शिव रूप में सजाया गया। वह शिव का चिन्तन करते हुए अपने कार्य के समय की राह देखने लगा। समय आने पर जब वह परदे के बाहर निकला तो उसका रूप देखकर सब लोग कह उठे, 'यह तो वास्तव में शंकर के समान दीख पड़ रहा है।' उधर शिव के ध्यान में गदाधर इतना तन्मय हो गया कि उसका भाषण और गायन बन्द होकर उसे भाव समाधि लग गई। मण्डप में सर्वत्र गड़बड़ी मच गई। गदाधर को उठा कर लोग भीतर ले गए और पानी उसके मुख पर छिड़का गया। बहुत देर बाद उसे होश आया। इस तरह उस दिन का नाटक बन्द करना पड़ा।

उस दिन से गदाधर को समय-समय पर भाव समाधि होने लगी। देवताओं का ध्यान करते समय वह इस तरह तन्मय हो जाता कि उसे आस-मान की सुधि न रह जाती, जिस दिन वह तन्मयता अधिक बढ़ जाती, उस दिन तो उसका बाह्य ज्ञान बिल्कुल नष्ट हो जाता और सारा शरीर लकड़ी की तरह अकड़कर पड़ा रहता। सचेत होने पर जब उससे पूछा जाता तो वह बताता कि जिस देवता का मैं ध्यान कर रहा था, या स्तुति सुन रहा

था उस देवता का मुझे दिव्य दर्शन हुआ।

इधर विद्याध्ययन के सम्बन्ध में गदाधर की उदासीनता का भाव अधिकाधिक बढ़ने लगा। हालांकि वह पहले ही के समान पाठशाला जाता था। वह रामायण, महाभारत इत्यादि धर्मग्रंथ ऐसी शान्तिपूर्वक एवं सुन्दर ढंग से पढ़ता था कि सुनने वाले एकदम भाव-विभोर हो उठते थे। गांव के लोग उससे इन ग्रंथों को पढ़वाकर सुनते थे।

इस तरह गदाधर का बारहवां वर्ष प्रारम्भ हुआ। उसके मंझले भाई रामेश्वर का 22वां और छोटी बहिन सर्वमंगला का 9वां वर्ष प्रारम्भ हुआ। रामकुमार ने बहिन और भाई का विवाह कर दिया। किन्तु सन् 1849 में उनकी पत्नी एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र को जन्म देकर संसार से चल बसी।

रामकुमार की पत्नी का स्वर्गवास होने के बाद उनकी गरीब गृहस्थी में दुख अधिक बढ़ गया, सम्पत्ति कम हो गई और गृहस्थी की दिनोंदिन अवनति होने लगी। उनकी डेढ़ बीघा जमीन से गुजर के लिए किसी तरह अनाज पूरा पड़ जाता था, किन्तु कपड़े इत्यादि अन्य वस्तुओं का अभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। इसके अतिरिक्त वृद्ध पिता तथा मातृविहीन शिशु अक्षय को नित्य दूध की आवश्यकता रहती थी। यह सब खर्च कर्ज लेकर चलाना पड़ता। इस तरह कर्ज बराबर बढ़ता गया। अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए रामकुमार ने अनेकों प्रयत्न किए, किन्तु सब व्यर्थ गए। तब उन्होंने अपने मित्रों की राय से कहीं दूसरी जगह जाने का निश्चय किया। इसके साथ ही जिस घर में उन्होंने अपनी पत्नी के साथ बीस वर्ष बिताए थे, वहां पग-पग पर पत्नी की स्मृति बिखरी हुई थी। उससे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने अपना गांव छोड़कर कलकत्ता जाने का निश्चय किया और पत्नी की मृत्यु के थोड़े ही दिन बाद रामेश्वर को गृहस्थी का भार सौंप कर रामकुमार कलकत्ता चले गए और वहां झामापुकुर मुहल्ले में उन्होंने एक पाठशाला खोली।

इधर रामकुमार की पत्नी के मरने से गृहस्थी के सभी कामों का बोझ चन्द्रा देवी पर आ पड़ा। रासकुमार के पुत्र अक्षय को संभालने में रामेश्वर की स्त्री उन्हें थोड़ी-बहुत सहायता देती थी, पर वह भी तो छोटी उम्र की

थी। अत: 58 वर्ष की अवस्था में गृहस्थी का सारा भार पुन: आ पड़ने पर उन्हें एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलता था।

रामेश्वर गदाधर से बहुत प्रेम करता था किन्तु उसके विद्याध्ययन की ओर वह ध्यान नहीं देता था। एक तो उसे इस विषय में रुचि नहीं थी, दूसरे उसे गृहस्थी की चिन्ता और अन्य झंझटों के कारण समय भी नहीं मिलता था। गदाधर की धार्मिक वृत्ति देखकर वह बहुत प्रसन्न होता था। और सोचता था, आगे चलकर यह कोई महापुरुष होगा। इस प्रकार रामकुमार के कलकत्ता चले जाने के बाद कोई देख-रेख करने वाला न होने के कारण गदाधर बिल्कुल स्वतन्त्र हो गया और उसका धर्मपरायण मन उसे जिस ओर ले जाता, उधर ही जाने लगा।

पड़ोस की स्त्रियों को गदाधर बड़ा प्यारा था। तीसरे पहर गांव की स्त्रियां चन्द्रा देवी के घर पर एकत्रित होकर गदाधर के भजन इत्यादि सुना करती थीं। गदाधर की आवाज बहुत मधुर थी और वह इतना तन्मय होकर देवताओं के भजन गाता था कि स्त्रियां भाव-विभोर हो उठती थीं। कभी-कभी भजन गाते-गाते गदाधर को भाव-समाधि लग जाती और उसका अन्त होने तक स्त्रियां बड़े भक्ति-भाव से उसकी ओर देखती रहतीं। इन स्त्रियों को गदाधर के जन्म के पूर्व माता-पिता के अद्भुत स्वप्न की बातें पता थीं, इसलिए वे गदाधर को कोई भावी महापुरुष समझकर अपार श्रद्धा और प्रेम करती थीं।

कभी-कभी गदाधर स्त्री वेश धारण कर स्त्रियों के समान अभिनय और भाषण करता था। उसका अभिनय इतना सजीव होता था कि अनजान मनुष्य यह नहीं पहचान सकता था कि यह पुरुष है। इसी प्रकार स्त्री वेश धारण कर एक बार गदाधर अन्य स्त्रियों के साथ हलधरपुकुर तालाब से पानी भर लाया पर उसे किसी ने नहीं पहचाना। उस गांव में गूजर गली में सीतानाथ पाईन नाम के एक सज्जन रहते थे। उनकी स्त्री और कन्या गदाधर से बहुत स्नेह रखती थीं। वे गदाधर को अक्सर अपने घर ले जाकर भजन गायन सुना करती थीं। कई बार उसे स्त्री वेश में सजाकर उसके हाव-भाव देखतीं। सीतानाथ गदाधर को बहुत चाहते थे, इसलिए उसे उनके यहां जाने की पूरी स्वतन्त्रता थी।

उस गली में एक दूसरे सज्जन दुर्गादास पाईन रहते थे। गदाधर से वह बहुत प्रेम करते थे। परन्तु उनके यहां परदे की प्रथा बड़ी कड़ी थी। गदाधर को वह अपने यहां स्त्रियों में नहीं जाने देते थे। अपने घर की परदा प्रणाली पर उन्हें बहुत अभिमान था। एक दिन किसी सज्जन के पास दुर्गादास अपने यहां के परदे की बड़ाई कर रहे थे। इतने में गदाधर वहां आ पहुंचा और उनकी बात सुनकर कहने लगा, 'परदे से क्या कभी स्त्रियों की पवित्रता की रक्षा हो सकती है। अच्छी शिक्षा और देशभक्ति से ही यह रक्षा सम्भव है। यदि मैं इरादा करूं तो आपके घर के परदे की सभी स्त्रियों को देख लूं और उनकी सारी बातें जान लूं।' दुर्गादास बड़े गर्व से बोले, 'अच्छा मैं भी देखूंगा कि तू भला कैसे देख पाता है?' गदाधर ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, 'किसी दिन समय आवेगा तो देखूंगा।' यह कहकर वह वहां से चला आया।

कुछ दिन बाद एक शाम को उसने अपना स्त्री वेश बनाया और अपना मुख वस्त्र से ढांपकर बगल में टोकरी लेकर दुर्गादास के यहां पहुंचा और दुर्गादास के यहां पहुंच कर द्वार पर खड़ा होकर बोला, 'पास के गांव से बाजार में सारी स्त्रियों के साथ सूत बेचने आई थी, पर वे मुझे छोड़कर चली गईं, इसलिए रात बिताने के लिए जगह ढूंढ़ती हूं। क्या आप मुझे अपने यहां आज रात बिताने के लिए जगह दे देंगे?' दुर्गादास ने उससे उसका नाम, गांव पूछा और कुछ अन्य प्रश्न पूछने के बाद बोले, 'अच्छा भीतर स्त्रियों के पास जाओ और वे जहां बतायें वहीं रातभर रहो।'

बड़ी कृतज्ञता से प्रणाम करके गदाधर भीतर गया और वहां भी वही किस्सा बताकर कहा, 'आज की रात बिताने के लिए जगह दे दो।' उसके बाद तरह-तरह की बातें करके उन स्त्रियों को मुग्ध कर लिया। वे स्त्रियां उसकी तरुण अवस्था और मधुर बातचीत से मोहित हो गईं और उन्होंने उसे रात में सोने के लिए एक कोठरी दे दी और खाने के लिए कुछ व्यवस्था कर दी। इस तरह गदाधर ने घर की सारी बातें बारीकी से देख लीं। इधर इतनी रात होने पर भी गदाधर के न लौटने पर चन्द्रा देवी को चिन्ता होने लगी और उन्होंने रामेश्वर से उसे ढूंढ़ने को कहा। गदाधर जहां-जहां जाता था, उन सब जगहों को रामेश्वर ने देख डाला, सीतानाथ के घर

तलाश किया, लेकिन गदाधर कहीं नहीं मिला। तब दुर्गादास के घर के पास खड़े होकर यों ही उसने गदाधर का नाम लेकर दो-तीन बारा पुकारा। रामेश्वर की आवाज पहचानकर और यह देखकर कि रात अधिक हो गई है, गदाधर ने भीतर से ही कहा, 'आता हूं भैया !' और दरवाजे की ओर दौड़ पड़ा। दुर्गादास गदाधर की चालाकी समझ गए और उन्हें मालूम हो गया कि गदाधर उन्हें धोखा देकर परदे के पीछे गया है, इससे उन्हें बहुत क्रोध आया। लेकिन गदाधर द्वारा स्त्री वेश धारण और उसकी स्त्रियों जैसी हू-ब-हू चाल-ढाल की बात सोचकर, साथ ही यह सोचकर कि इस लड़के ने अच्छा चकमा दिया, उन्हें बड़ी हंसी आई। शीघ्र ही यह बात गांव में फैल गई और सब कहने लगे, गदाधर ने दुर्गादास का घमण्ड खूब चूर किया। उसके बाद दुर्गादास ने गदाधर को अपने घर के अन्दर जाने-आने की छूट दे दी।

इस प्रकार कई वर्ष बीत गए। गदाधर को सत्रहवां वर्ष लग गया। वहां कलकत्ता में रामकुमार की पाठशाला उनके अथक परिश्रम से अच्छी उन्नत अवस्था में पहुंच गई थी। उन्हें चार पैसे की कमाई भी होने लगी थी। वे वर्ष में एक बार कामारपुकुर आते थे और कुछ दिन वहां रहते थे। गदाधर को विद्याभ्यास के प्रति उदासीन देखकर उन्हें बड़ी चिन्ता होती थी। सन् 1853 में जब वह घर आए तब चन्द्रा देवी और रामेश्वर से बात होने के बाद यह निश्चय हुआ कि गदाधर रामकुमार के साथ कलकत्ता जाकर रहे। रामकुमार वहां अकेले ही रहते थे। उन्हें घर काम करते हुए पाठशाला चलाने में बहुत कष्ट होता था, इसलिए गदाधर के वहां जाने से उनको कुछ सहायता मिलेगी, साथ ही गदाधर का भी विद्याभ्यास होगा, यही सोचकर उसे भेजने का निश्चय किया गया।

गदाधर से जब इस विषय में पूछा गया तो वह तुरन्त राजी हो गया। उसे इस बात से बहुत प्रसन्नता थी कि वह अपने पितृ तुल्य भाई की कुछ सहायता कर सकेगा।

कुछ दिन बाद शुभ मुहूर्त देखकर रामकुमार और गदाधर ने अपने कुलदेव और माता की वन्दना की और कलकत्ता की ओर प्रस्थान कर दिया। यह बात ईस्वी सन् 1853 की है।

कामारपुकुर के निवासियों को गदाधर की बहुत याद आती थी।

रामकुमार ने कलकत्ता के झामापुकुर मोहल्ले में अपनी पाठशाला खोल रखी थी और उस मोहल्ले के कुछ घरों की देवपूजा का भार भी अपने जिम्मे ले रखा था। किन्तु उनका बहुत समय पाठशाला में ही बीत जाने के कारण देवपूजा के लिए समय नहीं मिलता था। इस काम को छोड़ना भी असम्भव था, क्योंकि इससे आर्थिक परेशानी आ सकती थी, इसलिए उन्होंने इस काम का भार गदाधर के ऊपर छोड़ दिया। इस काम से गदाधर को भी अतीव आनन्द हुआ। वह दोनों समय देवपूजा का कार्य करने के साथ ही अपने भाई से पढ़ने भी लगा। कुछ ही दिनों में अपने स्वाभाविक गुणों के कारण गदाधर अपने यजमानों के घरों के लोगों को बहुत प्रिय हो गया। उसके सुन्दर रूप, कार्यकुशलता, सरल व्यवहार, मिष्ठ भाषण, देवभक्ति और मधुर स्वर ने यहां भी कामारपुकुर के समान सभी लोगों पर एक मोहिनी-सी छाप डाल दी। कामारपुकुर के समान यहां भी उसने अपने आस-पास बाल-गोपाल की मण्डली जमा कर ली और उनकी संगत में अपने दिन आनन्द से बिताने लगा। कलकत्ता आकर भी अध्ययन में उसकी विशेष उन्नति नहीं हुई।

रामकुमार को इससे बड़ी चिन्ता हुई और गदाधर को विद्याभ्यास करने के लिए उपदेश दे डाला। बड़े भाई की बातें शान्ति से सुनकर गदाधर ने उन्हें नम्रतापूर्वक स्पष्ट उत्तर दिया, 'दाल-रोटी प्राप्त करने वाली विद्या मुझे नहीं चाहिए। मुझे तो वही विद्या चाहिए जिससे हृदय में ज्ञान का उदय होकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।'

उस समय रामकुमार को गदाधर का यह उत्तर ठीक-ठीक समझ में नहीं आया। किन्तु वह गदाधर से बहुत प्रेम करते थे। इसी कारण उसकी इच्छा के विरुद्ध विद्याध्ययन के लिए उस पर दबाव नहीं डाला।

बाद के वर्षों में रामकुमार की आर्थिक स्थिति सुधरने के बदले और गिरती गई। पाठशाला में बालकों की संख्या घटती गई। अनेक प्रकार के परिश्रम करने पर भी पैसा नही मिलता था। इसलिए उन्होंने सोचा, पाठशाला बन्द करके कोई अन्य काम किया जाय। किन्तु उन्हें अन्य कोई विद्या आती नहीं थी, इसीलिए वह उसी काम को करते हुए सोचते रहे कि

ईश्वर ही कुछ सहायता करेगा।

सचमुच ईश्वर ने उनकी अद्भुत रूप से सहायता की।

कलकत्ते के दक्षिण भाग में जान बाजार नामक मोहल्ले में सुप्रसिद्ध रानी रासमणि का निवास स्थान था। वह जाति की धीमर थी। रामचन्द्र-दास अपने पीछे अपनी पत्नी रानी रासमणि और चार कन्याओं को छोड़कर परलोकवासी हुए थे। इस समय रानी रासमणि की आयु 44 वर्ष की थी। अपने पति की मृत्यु के बाद अपार सम्पत्ति के प्रबन्ध का भार उसके कंधों पर आ पड़ा। वह अत्यन्त व्यवहारकुशल थीं, इसीलिए सम्पत्ति की सारी व्यवस्था स्वयं ही करने लगीं। अपनी व्यवहारकुशलता एवं सुन्दर प्रबन्ध के कारण उनका नाम कलकत्ते में शीघ्र ही गूंज उठा। वह सदैव दीन-दुखियों की सहायता खुले हृदय से करने को तत्पर रहती थीं।

समय पर रानी ने अपनी चारों कन्याओं का विवाह कर दिया। तीसरी कन्या करुणामयी का विवाह उन्होंने मथुर नाथ विश्वास नामक कुलीन मगर साधारण घराने के लड़के के साथ किया था, किन्तु विवाह के थोड़े दिन बाद करुणामयी का स्वर्गवास हो गया। मथुर नाथ से रानी बहुत स्नेह करती थीं। मथुर नाथ भी रानी के पास ही रहकर उनकी सम्पत्ति की देखभाल में सहयोग देते थे। करुणामयी की मृत्यु के बाद दूरदर्शी तथा व्यवहारकुशल रानी ने अपनी छोटी कन्या जगदम्बादासी का विवाह मथुर नाथ से ही कर दिया।

रानी बहुत दिनों से काशी यात्रा का विचार कर रही थीं। उन्होंने यात्रा की सभी तैयारियां कर ली थीं और बहुत-सा धन यात्रा के खर्चे के लिए अलग रख लिया था। कलकत्ता से यात्रा करने के लिए प्रस्थान के पूर्व रात्रि के समय देवी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा—'तू काशी मत जा। भागीरथी के किनारे मेरे लिए एक सुन्दर मन्दिर बनवा दे और वहां मेरी नित्य पूजा का प्रबन्ध कर दे जिससे मैं वहां रहकर तेरी नित्य पूजा ग्रहण किया करूंगी।' इस आदेश को पाकर रानी ने अपने को धन्य माना और काशी यात्रा का विचार त्याग कर देवी के आदेशानुसार चलने का

उन्होंने तुरन्त निश्चय किया।

उसके बाद रानी ने भागीरथी के किनारे बहुत से स्थानों को देखकर कलकत्ता के उत्तर की ओर दक्षिणेश्वर ग्राम के समीप एक स्थान पसन्द किया और सन् 1847 के सितम्बर मास में वहां 50 बीघे जमीन खरीद कर शीघ्र ही विशाल काली मन्दिर बनवाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सात वर्ष तक लगातार काम चलते रहने पर 1854 तक भी सम्पूर्ण मन्दिर नहीं बन पाया था। रानी ने सोचा, शरीर का कोई भरोसा नहीं है। मन्दिर का कार्य तो बाद में भी चलता रहेगा। यही सोचकर मुख्य काली मन्दिर के पूरा होते ही रानी ने सन् 1855 में देवी की प्राणप्रतिष्ठा करा दी।

परन्तु उन्हें इस कार्य में अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ा। देवी का मन्दिर तो तैयार हो गया किन्तु नित्य पूजा इत्यादि करने वाला योग्य ब्राह्मण कैसे मिले। रानी तो जाति की धीमर थीं; शूद्रों की नौकरी करने के लिए कौन तैयार होता? उस समय सामाजिक प्रथा यह थी कि शूद्रों के बनाए हुए देवालय में पूजा करना तो क्या, कोई कर्मठ ब्राह्मण उस मन्दिर के देवता को प्रणाम तक नहीं करता था। रानी के मन में देवी के प्रति प्रगाढ़ भक्ति थी, इसलिए वह सोचती थीं, पूजा करने के लिए ब्राह्मण ही क्यों चाहिए? क्या देवी मेरे हाथ से सेवा ग्रहण नहीं करेगी? मैं स्वयं ही सेवा करूंगी और देवी का सारा कार्य करूंगी? लेकिन तुरन्त ही वह यह भी सोचने लगती, यह सब तो ठीक है, पर यदि मैं ही स्वयं नित्य सेवा करने लगूं तो शास्त्र-विरुद्ध आचरण हो जाने के कारण भक्त ब्राह्मण आदि मन्दिर में आकर प्रसाद ग्रहण नहीं करेंगे। फिर इतना बड़ा मन्दिर बनवाने से क्या लाभ? इस विषय पर उन्होंने अनेक शास्त्री और पण्डितों से परामर्श किया, पर कोई सन्तोषजनक व्यवस्था न दीखी।

मन्दिर और मूर्ति तैयार हो गई, किन्तु उसकी नित्य पूजा की कोई समुचित व्यवस्था न होने के कारण रानी बेचैन रहने लगीं और सोचने लगीं, क्या इतना बड़ा मन्दिर बनाना व्यर्थ ही होगा?

ऐसे संकट के समय झामापुकुर की पाठशाला के अध्यापक रामकुमार ने एक युक्ति सुझाई कि देवी का मन्दिर और सब सम्पत्ति यदि रानी किसी ब्राह्मण को दान कर दें और उसके बाद वह ब्राह्मण देवी की नित्य सेवा का

प्रबन्ध करे तो शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन नहीं होगा और ब्राह्मण आदि उच्च वर्ग के लोगों को वहां प्रसाद ग्रहण करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी।

यह व्यवस्था सुनकर रानी को धीरज हुआ और उन्होंने देवी की सम्पत्ति को अपने गुरु के नाम करके उनकी अनुमति से स्वयं उस सम्पत्ति की व्यवस्थापिका बनकर रहने का इरादा किया। यह बात जब शास्त्री लोगों को मालूम हुई तो उन्होंने कहा, नहीं ऐसी चाल कहीं नहीं है और ऐसा करने पर भी कोई ब्राह्मण उस मन्दिर में नहीं जाएगा। पर उन्हें इस कार्य को शास्त्र विरुद्ध कहने का साहस नहीं हुआ।

सब पण्डितों के मत के विरुद्ध रामकुमार को अपना मत स्पष्ट प्रकट करते देखकर तथा यह जानकर कि वे उन लोगों की परवाह नहीं करते, रानी को रामकुमार के सम्बन्ध में बहुत आशा हुई और उनके लिए रानी के मन में आदर उत्पन्न हुआ।

उन्होंने रामकुमार से ही देवी की नित्य पूजा का भार उठाने के लिए प्रार्थना की। रामकुमार इसके लिए तैयार हो गए। इस तरह रामकुमार का और उनके कारण गदाधर का दक्षिणेश्वर से सम्बन्ध हो गया। रामकुमार पुजारी के पद पर निर्वाचित हुए और योग्य पुजारी मिल जाने से रानी भी निश्चिन्त हुई।

31 मई 1855 को बड़े समारोह के साथ काली जी के नये मन्दिर में देवी की प्राण-प्रतिष्ठा हुई और सारे दिन दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर पवित्र धुनों से गूंजता रहा। रानी ने इस उत्सव में पानी के समान पैसा बहाया। काशी, प्रयाग, कन्नौज, नवद्वीप इत्यादि स्थानों के बड़े-बड़े नामी पण्डित और विद्वान ब्राह्मण उस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। उन सभी ब्राह्मणों में प्रत्येक को रानी ने एक-एक रेशमी वस्त्र, दुपट्टा और एक मुहर दक्षिणा में दी। दिन-भर भोजन के लिए लोगों की पंगत पर पंगत बैठती रही। मन्दिर बनवाने और प्राण-प्रतिष्ठा करवाने में रानी ने कुल नौ लाख रुपये खर्च किए। देवी की नित्य पूजा की ठीक व्यवस्था रखने के लिए रानी ने दो लाख पच्चीस हजार रुपये खर्च करके दिनाजपुर जिले का शालवाड़ी परगना खरीदकर उसकी आमदनी यहां के खर्चे के लिए लगा दी।

उस दिन के इतने बड़े उत्सव में वहां प्रसाद न लेने वाला केवल एक व्यक्ति रह गया—वह था गदाधर। वहां के सभी कार्यक्रम में उसने बड़े उत्साह से भाग लिया। लोगों के साथ खूब आनन्द मनाया। लेकिन आहार के सम्बन्ध में बड़ा विवेकी और नैष्ठिक होने के कारण अथवा अन्य किसी कारण से ही उसने सारा दिन उपवास में बिता दिया और संध्या समय पास ही की एक दुकान से एक पैसे का चिउड़ा लेकर खा लिया और रात होने पर झामापुकुर को लौट गया।

गदाधर तो रात में घर वापस आ गया, पर रामकुमार रात में घर वापस नहीं आये। उनका पता लगाने के उद्देश्य से गदाधर प्रातःकाल फिर दक्षिणेश्वर चला गया, कि वहां पहुंचकर उसने जाना कि रामकुमार की अभी घर जाने की इच्छा नहीं है। दोपहर में गदाधर पुनः झामापुकुर लौट गया। काम समाप्त होने पर भैया स्वयं लौट आयेंगे, यह सोचकर गदाधर 5-7 दिन दक्षिणेश्वर नहीं गया। फिर भी जब रामकुमार नहीं लौटे तो आठवें दिन गदाधर फिर दक्षिणेश्वर पहुंचा। वहां उसे पता लगा कि बड़े भाई ने स्थायी रूप से पुजारी का पद ग्रहण कर लिया है। यह सुनकर उसे अच्छा नहीं लगा। हमारे पिता ने शूद्र का दान तक कभी नहीं लिया और भाई शूद्र की चाकरी करने लगे, यह कैसी बात है? यह सोचकर गदाधर ने रामकुमार से नौकरी छोड़ देने की बहुत विनती की। रामकुमार ने अपने छोटे भाई का कहना शान्ति के साथ सुन लिया और अनेक प्रकार से शास्त्र तथा युक्ति से उसे समझाने का प्रयत्न किया, पर सब निष्फल हुआ। अन्त में यह निश्चय हुआ कि रामकुमार ने यह कार्य उचित किया या अनुचित, इस विषय के निर्णय के लिए चिट्ठियां डाली जाएं पर चिट्ठी में भी 'रामकुमार ने यह उचित किया' ऐसा ही निकलने पर गदाधर मान गया।

यह तो ठीक हुआ, किन्तु गदाधर के मन में अब यह प्रश्न उठने लगा कि अब पाठशाला बन्द रहेगी और बड़े भाई दक्षिणेश्वर में रहेंगे तो हमें क्या करना होगा! बहुत देर तक विचार करते रहने के कारण बहुत विलम्ब हो गया, इसलिए गदाधर उस दिन वहीं रह गया। रामकुमार ने उससे देवी का प्रसाद लेने के लिए कहा, पर गदाधर किसी तरह भी इसके

लिए राजी नहीं हुआ। रामकुमार ने कहा, 'गंगाजी के पवित्र जल से पकाया हुआ और वह भी देवी का प्रसाद, फिर तू क्यों नहीं लेता ?' तब भी गदाधर राजी नहीं हुआ। तब रामकुमार ने कहा, 'अच्छा ऐसा कर, कोठी से कच्चा अन्न ले आ और गंगाजी की बालू पर अपने हाथ से रसोई बनाकर खा। तब तो ठीक हो जाएगा। गंगाजी के किनारे सभी वस्तुएं पवित्र हो जाती हैं, यह तो तुझे स्वीकार है न ?' गदाधर की आहार सम्बन्धी निष्ठा उनकी गंगा भक्ति के सामने पराजित हो गई। उस दिन से गदाधर अपने हाथ से ही रसोई बनाने लगा और दक्षिणेश्वर में ही रहने लगा।

उसके सुन्दर रूप, मनोहर आवाज, नम्र और विनय युक्त स्वभाव और इस अल्पावस्था में ही ऐसी धर्मनिष्ठा को देखकर रानी के जामाता मधुर बाबू की उस पर विशेष अनुकम्पा रहने लगी और वह उससे बहुत प्रसन्न रहने लगे।

देवी की प्राण-प्रतिष्ठा के बाद लगभग एक मास तक गदाधर शान्त था। उसका कोई कार्यक्रम निश्चित नहीं हुआ था। मधुर बाबू की इच्छा थी कि उसे मुख्य पुजारी के सहायक का पद दे दिया जाए। रामकुमार से उन्होंने ऐसा कहा भी, किन्तु रामकुमार गदाधर को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उन्होंने मधुर बाबू को बता दिया कि वह ऐसा स्वीकार नहीं करेगा किन्तु मधुर बाबू इतनी जल्दी हार मानने वाले नहीं थे। लेकिन इस समय उन्होंने आग्रह करना ठीक नहीं समझा और वह समय की प्रतीक्षा करने लगे।

लगभग इसी समय गदाधर की फुफेरी बहन हेमांगिनी के पुत्र हृदय मुकर्जी किसी काम की तलाश में दक्षिणेश्वर आए, यहां गदाधर को देखकर उन्हें बहुत आनन्द हुआ। गदाधर और वह समवयस्क थे, इसलिए खूब आनन्द से दोनों रहने लगे।

बड़ भाई से मधुर बाबू की इच्छा जान लेने के बाद गदाधर मधुर बाबू के सामने आने या उन्हें दिखाई देने का अवसर टालने लगा; क्योंकि जैसे सत्य और धर्म पालन करते समय वह किसी का कहना नहीं मानता था, उसी प्रकार किसी को व्यर्थ कष्ट देने में भी उसे बहुत कष्ट होता था। वह

सोचता था कि अगर मधुर बाबू के लिए उसके मुंह से कोई अप्रिय वचन निकल गया तो उन्हें कष्ट होगा। यही सोचकर वह उनके सामने जाने से बचने लगा। इधर दक्षिणेश्वर में जैसे-जैसे समय बीतने लगा, वैसे ही वैसे उसके मन में यह विचार आने लगा कि मुझे यहीं रहने को मिले तो ठीक है और वह स्थान उसे अधिकाधिक प्रिय हो चला, इसलिए अपना विचार निश्चित होने तक उसने मधुर बाबू से दूर ही रहना ठीक समझा।

परन्तु जिस बात से वह डरता था, वह अपने आप एक दिन सामने आ पड़ी। उस दिन मधुर बाबू देवी दर्शन के लिए आये थे। उन्होंने दूर ही से गदाधर को देखा और उसे बुलवा भेजा। हृदय साथ ही में थे। मधुर बाबू को देखते ही गदाधर उन्हें अनदेखा करके दूसरी ओर जाने के विचार में था। तभी नौकर ने आकर कहा, 'बाबू साहब आपको बुला रहे हैं।' उनके पास जाने का गदाधर को अनिश्चय देखकर बोल उठे, 'मामा, बाबू बुलाते हैं। चलिए न वहां!' गदाधर ने उत्तर दिया, 'वहीं जाकर क्या करना है? वे मुझ से नौकरी के विषय में ही कहेंगे।' हृदय ने कहा, 'तो उसमें हानि क्या है? बड़ों के आश्रय में रहने से बुराई क्या है?' गदाधर ने कहा, 'जन्म-भर नौकरी करने को मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है। इसके अतिरिक्त यहां नौकर हो जाने पर देवी के गहनों के लिए जिम्मेदार रहना होगा, और उस तरह की झंझट मुझसे न हो सकेगी, फिर भी अगर तुम यह जिम्मेदारी स्वीकार करते हो तो नौकरी करने में मुझे कोई हर्ज नहीं है।' हृदय तो नौकरी की खोज में ही वहां आये थे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से गदाधर की बात मान ली और तब वे दोनों मधुर बाबू के पास गए। गदाधर के अनुमान के अनुसार मधुर बाबू ने उससे नौकरी के लिए ही पूछा। गदाधर ने अपनी बात स्पष्ट रूप से बता दी और मधुर बाबू ने भी उसे स्वीकार कर लिया। तुरन्त ही उसी दिन उन्होंने गदाधर को देवी के वेशकारी पद पर नियुक्त कर दिया और हृदय को उसका तथा रामकुमार सहायक बना दिया। यह घटना सन् 1856 की है। अपने भाई को नौकर होते देखकर रामकुमार निश्चिन्त हो गए। इस प्रकार देवी की प्राण-प्रतिष्ठा होने के तीन मास के अन्दर ही गदाधर ने वहां का पुजारी पद स्वीकार कर लिया। पूजा के समय उनकी तन्मयता, अन्य समय का उनका

सरल व्यवहार, उनके सुन्दर स्वरूप और उनकी मधुर आवाज को देखकर मधुर बाबू के मन में उसके प्रति उत्तरोत्तर आदर और प्रेम बढ़ने लगा।

उसी वर्ष जन्माष्टमी के दूसरे दिन श्री राधा गोविन्दजी के पुजारी क्षेत्रनाथ के हाथ से गोविन्दजी की मूर्ति नीचे फर्श पर गिर पड़ी और उसका एक पैर भंग हो गया। पुजारी को भी चोट लगी। चोट तो वह भूल गया, लेकिन मधुर बाबू के भय से वह कांपने लगा। खण्डित मूर्ति की पूजा शास्त्र में निषिद्ध है, अतः अब इसके लिए क्या उपाय हो ? मधुर बाबू ने शास्त्रज्ञ पंडितों की सभा बुलाई और उनसे राय ली। सभा में सबने यही कहा कि भग्न मूर्ति को हटाकर उसके स्थान पर कई मूर्ति की स्थापना की जाए। लेकिन वह मूर्ति बड़ी मनोहारी थी। पंडितों के निर्णय के अनुसार उसे फेंक देना होगा, इस बात से मधुर बाबू को बहुत दुख था। उसके मन में आया कि इस विषय में बाबा से पूछना चाहिए। देखें, वह क्या कहते हैं। मधुर बाबू गदाधर को बाबा ही कहते थे। गदाधर से पूछते ही उत्तर दिया, 'रानी के जमाइयों में से यदि किसी के चोट लगकर पैर टूट जाए तो क्या वह उसे फेंक देंगी और उसके स्थान पर दूसरा बैठा देंगी, या उसी पैर को दुरुस्त करने की व्यवस्था करेंगी ? यहां भी वैसा ही करना चाहिए।'

इस बात से मधुर बाबू बहुत प्रभावित हुए। इतनी सरल-सी बात किसी को भी नहीं सूझी थी। मधुर बाबू ने बाबा का निर्णय मान लिया। गदाधर ने उस टूटे हुए पैर को इस खूबी के साथ जोड़ दिया कि किसी को उसके अंग-भंग होने का ज्ञान न हो पाया। मधुर बाबू ने क्षेत्रनाथ को काम से अलग कर दिया और उसके स्थान पर गदाधर की नियुक्ति कर दी और हृदय रामकुमार के सहायक के रूप में रख दिया गया।

दक्षिणेश्वर की नौकरी कर लेने पर रामकुमार का आर्थिक कष्ट तो कुछ कम हो गया पर अपने छोटे भाई की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई उदासीनता और एकान्तप्रियता से उन्हें बड़ी चिन्ता होने लगी। गदाधर किसी विषय में उत्साह न दिखाता था और हृदय के अतिरिक्त किसी से अधिक न बोलना चाहता था। रामकुमार ने सोचा कि शायद घर और माता की अधिक याद आती है, इसीलिए गदाधर उदास रहता है। लेकिन बहुत दिन बीत जाने

के बाद भी गदाधर के मुंह से घर जाने की बात नहीं निकलती थी। यह देखकर उसके स्वभाव में होने वाले परिवर्तन का कारण रामकुमार की समझ में नहीं आता था। इसके बाद मधुर बाबू ने गदाधर को पुजारीपद पर नियुक्त किया तब रामकुमार को कुछ अच्छा लगा। इधर रामकुमार की तबियत भी कुछ ठीक नहीं रहती थी। वह सोचते थे कि कहीं अचानक ही उनका निधन हो गया तो उसके परिवार का क्या होगा, इसीलिए वह चाहते थे कि छोटे भाई को पुजारी का सब काम पूरा सिखाकर चार पैसे कमाने योग्य बना दें। इसी इरादे से रामकुमार ने गदाधर को देवी की पूजा, चण्डीपाठ आदि सिखलाना शुरू किया। गदाधर ने अपनी अलौकिक स्मरणशक्ति के कारण इन सब बातों को तुरन्त ही सीख लिया और पूजा के समय इनका उपयोग भी आरम्भ कर दिया। यह देखकर रामकुमार को बहुत प्रसन्नता हुई और वह मधुर बाबू की सम्पत्ति से गदाधर को श्री देवी की पूजा का भार सौंपकर स्वयं श्री राधा गोविन्द की पूजा करने लगे। शक्ति दीक्षा लिए बिना देवी की पूजा करना अनुचित समझकर गदाधर ने भी केनारभट्टाचार्य नामक एक शक्ति उपासक और उच्च श्रेणी के साधक से शक्ति की दीक्षा ले ली। ऐसा कहते हैं कि शक्ति दीक्षा लेते ही गदाधर को समावेश प्राप्त हो गया। उसकी असाधारण भक्ति देखकर केनाराम को भी आनन्द हुआ और उन्होंने उसे प्रसन्न हृदय से आशीर्वाद दिया।

उसके कुछ दिनों बाद रामकुमार ने विचार किया कि मधुर बाबू से कहकर हृदय को अपने स्थान पर नियुक्त करके कुछ दिनों के लिए घर हो आऊं। लेकिन कुछ ऐसे कारण पड़ गए कि वह घर नहीं जा सके।

एक दिन वह किसी काम से कलकत्ता के उत्तर में श्यामनगर को गए थे, वहीं अकस्मात उनका स्वर्गवास हो गया। यह सन् 1857 की बात है। रामकुमार देवी के पुजारी के पद पर लगभग एक वर्ष तक रहे।

पिता के समान बड़े भाई रामकुमार की मृत्यु से गदाधर को हार्दिक दुख हुआ। रामकुमार उससे 31 वर्ष बड़े थे और पिता की मृत्यु के बाद गदाधर को उन्होंने ही छोटे से बड़ा किया था। गदाधर को पिता की याद

न आने पाए, इस सावधानी को दृष्टि में रखते हुए रामकुमार ने उसका लालन-पालन किया था।

रामकुमार की इस तरह अचानक मृत्यु हो जाने से गदाधर संसार से और उदासीन हो गया और सदा देवी की पूजा और ध्यान में ही मग्न रहने लगा। वह हमेशा सोचा करता, मनुष्य को ईश्वर का दर्शन होना यथार्थ में सम्भव है या नहीं ? हम इतनी व्याकुलता से पुकारते हैं। क्या उसे सुनने वाला वास्तव में कोई है ? क्या हमारी पूजा ग्रहण करने वाला वास्तव में कोई नियन्ता है ? अब वह अधिक समय देवी के पास ही बैठकर चिन्तन में समय बिताने लगा। इसी समय से उसने गप्पें लगाना भी बिल्कुल बन्द कर दिया था और दोपहर के समय देवी के मन्दिर का दरवाजा बन्द होने पर सब लोगों से दूर पंचवटी के समीप जंगल में जाकर जगद्माता के चिन्तन में अपना सब समय व्यतीत करने लगा।

हृदय को अपने मामा का इस प्रकार उदासीन बर्ताव पसन्द नहीं आया। लेकिन वह कह भी क्या सकते थे ? वह जानते थे कि गदाधर के मन में जो भी आवेगा, वह कर गुजरेगा और किसी की भी न सुनेगा। रात में जब सब लोग सो जाते थे तो गदाधर चुपचाप उठकर कहीं चला जाता था। इससे हृदय को बहुत चिन्ता होने लगी थी। वह सोचते थे, दिन-भर पूजा इत्यादि का श्रम और रात का जागरण और फिर आहार में भी कमी ! इन सब बातों को देखते हुए मामा के स्वास्थ्य बिगड़ने की पूरी आशंका थी। हृदय इसका कोई उपाय ढूंढ़ निकालने के लिए व्यग्र थे।

पंचवटी[1] की ओर रात में कोई नहीं जाता क्योंकि लोगों का ख्याल था कि उस जगह भूतों का निवास है। उस जंगल में आंवले का एक पेड़ था। उस आंवले के पेड़ के नीचे थोड़ी-सी समतल जमीन थी। उसके चारों ओर बहुत-सी झाड़ियां थीं और जंगल बढ़ जाने के कारण उस पेड़ के नीचे बैठने वाले मनुष्य को जंगल के बाहर का कोई आदमी देख भी नहीं सकता था। गदाधर रात के समय इसी स्थान में बैठकर ध्यान, जप आदि करता था।

एक रात नियम के अनुसार इसी स्थान में जाने के लिए गदाधर

---

1. काली मन्दिर के अहाते में एक स्थान।

चला। हृदय भी उठकर चुपचाप उसका पीछा करने लगे। वहां पहुंचकर ज्योंही गदाधर ध्यान करके बैठा, हृदय उसे डराने के लिए बाहर से ढेले और पत्थर फेंकने लगे। जब काफी समय बीत जाने पर भी गदाधर नहीं निकला तो हृदय थककर लौट आए। दूसरे दिन उन्होंने पूछा, 'मामा, रात में जंगल में जाकर आप क्या करते हैं?' गदाधर ने उत्तर दिया, 'वहां आवले का एक पेड़ है। उसके नीचे बैठकर जप-ध्यान करता हूं। शास्त्र का वाक्य है किआंवले के पेड़ के नीचे ध्यान करने से इच्छित फल प्राप्त होता है।' यह सुनकर हृदय चुप हो गया।

बड़े भाई की मृत्यु के बाद गदाधर अधिक तन्मयता के साथ जगदम्बा के जप-ध्यान में निमग्न रहने लगा और उसके दर्शन के लिए जो कुछ भी करना उसे आवश्यक लगता था वह तुरन्त करने लगा। यथाविधि पूजा करने के बाद रामप्रसाद आदि भक्त साधकों के पद देवी को सुनाना गदाधर की पूजाविधि का अंग हो गया। उनके पदों को गाते समय गदाधर का हृदय अपार उत्साह से भर जाता था और उसे ऐसा लगता था कि जब रामप्रसाद आदि को माता का दर्शन हुआ था तो पुनः उसका दर्शन हो सकता है। फिर मुझे माता का दर्शन क्यों नहीं मिलेगा? ऐसा सोचकर वह व्याकुल होकर कहता था, 'मां! तूने रामप्रसाद को दर्शन दिया और मुझे ही क्यों नहीं देती? मुझे धन नहीं चाहिए, मान नहीं चाहिए; भोग सुख नहीं चाहिए—कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे केवल तेरा दर्शन चाहिए।'

इस तरह प्रार्थना करते समय गदाधर की आंखों से अश्रुधारा बहने लगती थी और रोने से हृदय का भार कुछ हलका होने पर वह पुनः भजन गाने लगते थे। इस प्रकार पूजा, ध्यान, जप, भजन—इन्हीं में उनके दिन बीतने लगे। साथ ही उनके हृदय की व्याकुलता भी दिनोंदिन बढ़ने लगी। साथ ही पूजा में भी अधिक समय लगने लगा। पूजा करते समय कभी-कभी वे अपने ही मस्तक पर फूल चढ़ाकर दो-दो घण्टे निस्पन्दन होकर बैठे रहते थे या देवी भोग ग्रहण कर रही हैं, इसी भावना से देवी के सामने भोग रखकर घण्टों बैठे रहते थे। प्रातःकाल उठकर सुन्दर फूल तोड़ लाते थे और स्वयं अपने हाथ से माला गूंथते थे। देवी का शृंगार करने में भी वह बहुत समय लगा देते थे। कभी तीसरे पहर या आरती के बाद ऐसी तन्म-

यता से पद गाते थे कि बहुत-सा समय निकल जाने का भी उनको पता नहीं रहता था। जब दूसरे बार-बार इस ओर संकेत करते तब उन्हें होश आता था।

ऐसी अद्भुत निष्ठा, भक्ति और व्याकुलता देखकर सब लोगों की दृष्टि गदाधर की ओर आकर्षित होने लगी। कुछ दिन तो लोग उनका मजाक बनाते रहे, पर बाद में उनका भाव बदल गया और बहुतों के मन में गदाधर के प्रति आदर हो गया। गदाधर की पूजा और तन्मयता को देखकर मथुर बाबू बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने रानी से कहा, 'हमें बड़ा अद्भुत पुजारी मिला है। देवी बहुत शीघ्र जाग्रत हो जायेगी।'

एक दिन वह नित्य के समान तन्मयता से जगदम्बा के सामने गायन कर रहे थे—'मां ! तुझे मैंने इतना पुकारा और मैंने तेरी इतनी विनती की, पर ये सब क्या तुझे सुनाई नहीं देता ? तूने रामप्रसाद को दर्शन दिया और मुझको दर्शन क्यों नहीं देती ! तू ऐसा क्यों करती है ?' इतने पर भी जब माता के दर्शन नहीं हुए तो उनके हृदय में तीव्र उद्विग्नता हुई। ऐसा लगा जैसे कोई उनके हृदय को ऐंठ रहा हो। यह सोचकर उनका हृदय घबराने लगा कि क्या माता का दर्शन कभी नहीं होगा ?

उन्होंने सोचा, अब इस अवस्था में जीवित रहकर क्या करना है ? बस अब तो देवी के चरणों में प्राण देना ही ठीक होगा। तभी वहीं टंगी तलवार पर उनकी दृष्टि गई और उससे अपने जीवन को समाप्त कर देने के उद्देश्य से वह पागलों के समान उस पर झपटे। वह उस तलवार को लेकर अपने सीने में मारने ही वाले थे, तभी माता का अपूर्व, अद्भुत दर्शन हुआ। गदाधर एकदम बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। उसके बाद बाहर क्या हुआ, वह दिन कैसे गुजरा, इसका उन्हें बिल्कुल होश नहीं रहा। हृदय में बस अजस्र आनन्द की धारा बहती रही।

इस दर्शन के पश्चात् श्री जगमाता के सदा सर्वकाल अखंड दर्शन के लिए वे ऐसी व्याकुलता से आक्रोश करते थे कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अक्सर चिल्लाते-चिल्लाते बेहोश हो जाते और उस समय उन्हें ऐसा लगता कि माता उनके सामने खड़ी हंस रही हैं, बोल रही हैं और तरह-तरह से सांत्वना दे रही हैं—साथ ही शिक्षा भी।

भारत के इतिहास में गदाधर को युगपुरुष रामकृष्ण परमहंस के रूप में जाना गया।

जगदम्बा के प्रथम दर्शन के आनन्द में मग्न हो जाने के कारण श्री रामकृष्ण के लिए कुछ दिनों तक कोई काम करना असम्भव हो गया। श्री देवी की पूजा आदि नित्य के कर्म भी उनसे नहीं हो पाते थे। मथुर बाबू की सम्मति से एक दूसरे ब्राह्मण की सहायता से हृदय वह काम करने लगा। हृदय ने सोचा कि मेरे मामा को सम्भवत: कोई वायुरोग हो गया है, इसीलिए उसने उनके लिए दवा की व्यवस्था कर दी। हृदय का एक वैद्य से परिचय था। उनकी औषधि श्री रामकृष्ण को देते हुए बहुत दिन बीत गए, किन्तु कोई लाभ न हुआ। तब उन्होंने श्री रामकृष्ण के वायुरोग से पीड़ित होने का समाचार उनके घर कामारपुकुर पहुंचा दिया।

जिस दिन श्री रामकृष्ण होश में रहते थे, उस दिन पूजा इत्यादि नित्य कर्म करते थे। इस समय श्री रामकृष्ण की पूजा और ध्यान आदि कर्मों ने कुछ अद्भुत रूप धारण कर लिया था। वह अपने को पूर्णरूप से श्री जगदम्बा को समर्पित कर देते थे। इस भाव में श्री जगदम्बा की शरण लेने के कारण उनमें बालकों का-सा विश्वास, सरलता, शरणागत भाव और माधुर्य सदा दिखाई देता था।

पहले पूजा, ध्यान आदि करते समय उन्हें अपने सामने की पाषाण मूर्ति में श्री जगदम्बा का प्रत्यक्ष आवर्भाव दिखाई देता था। अब देवालय में वह जाकर देखते थे तो उन्हें पाषाण मूर्ति ही नहीं दिखाई देती थी। उसके स्थान पर मानो जीवित, जाग्रत माता अभयदान देती हुई सदा दिखाई देती थी। श्री रामकृष्ण कहते थे कि नाक पर हाथ लगाकर देखने से मालूम होता था कि मानो सचमुच माता श्वासोच्छ्वास ले रही हैं। अपने कमरे में बैठे-बैठे सुनने में आता था कि माता पैरों में पैजन पहनकर एक बालिका के समान बड़े आनन्द से झुनझुन करती हुई सीढ़ी पर से जा रही हैं। यह सत्य है या नहीं, यह देखने के लिए बाहर आने पर यथार्थ में सही बात दिखाई देती थी कि माता अपने खुले केश छोड़कर छज्जे पर खड़ी हैं और बीच-

बीच में कलकत्ते की ओर या कभी गंगा की ओर देखती हैं।

हृदय कहते थे, 'श्री रामकृष्ण जब मन्दिर में रहते थे तो उस समय का कहना ही क्या था, किन्तु अन्य समय भी इन दिनों काली मन्दिर में प्रवेश करते ही शरीर रोमांचित हो जाता था। इसलिए श्री रामकृष्ण के पूजा के समय क्या-क्या होता है यह देखने का मैं अवसर नहीं खोता था। कई बार मैं अचानक वहां जा पहुंचता था उससे उस समय यद्यपि मन भक्ति और आश्चर्य से डूब जाता था, पर बाहर आते ही शंका उत्पन्न हो जाती थी। मुझे ऐसा लगता था, मामा सचमुच पागल हो गए हैं अन्यथा पूजा में वह इस प्रकार भ्रष्टाचार कैसे करते? रानी और मधुर बाबू को जब इसका पता लगेगा तो वे न मालूम क्या कहेंगे?'

मन्दिर में एकाएक जाने से श्री रामकृष्ण के जिन कार्यों से हृदय के मन में भय और भक्ति दोनों विकार हुआ करते थे, उसके बारे में उन्होंने बताया था—'एक दिन देखा कि जो, बिल्वीर्घ्य तैयार करके मामा ने पहले उससे अपने ही मस्तक वक्ष एवं अंग में, इतना ही नहीं वरन् पाद को भी स्पर्श किया तत्पश्चात् उसे श्री जगदम्बा के चरणों में चढ़ाया।'

'एक दिन यह देखने में आया कि किसी मतवाले के समान उनके नेत्र और छाती आरक्त हो गई थी। उसी अवस्था में पूजन के आसन से उठकर वे झूमते हुए ही सिंहासन पर चढ़ गए और जगदम्बा की ठुड्डी पकड़कर उसे हाथ से सहलाने लगे। बीच ही में गाना गाने लगे और धीरे-धीरे कुछ कहने लगे तथा माता का हाथ पकड़कर नाचने लगे।'

'एक दिन श्री जगदम्बा को भोग लगाते समय मामा उठकर खड़े हो गए और थाल में से एक ग्रास उठाकर वह जल्दी से सिंहासन पर चढ़ गए और वह कौर माता के मुख में डालते हुए कहने लगे—'खाओ, माता खाओ! अच्छी तरह खाओ!' थोड़ी देर बाद बोले, 'क्या कहती है? मैं पहले खाऊं? तो फिर लो मैं ही खाता हूं।' यह कहकर उसमें से कुछ अंश स्वयं खाकर पुनः वह ग्रास माता के मुख में डालते हुए बोले, मैंने तो खा लिया। अब तू खा भला।'

'एक दिन नैवेद्य के समय एक बिल्ली म्याऊं-म्याऊं करती हुई वहां आ गई। तब मामा ने कहा, 'खाओ माता, खाओ भला!' यह कहते हुए वह

सारा नैवेद्य बिल्ली को ही खिला दिया।

एक दिन रात के समय जगदम्बा को पलंग पर सुलाकर मामा एकदम बोले, 'मुझे अपने पास सोने को कहती हो? अच्छा तो फिर सो जाता हूं माता।' यह कहकर जगदम्बा के उस रुपहली पलंग पर कुछ देर सोये रहे।

सारी रात मामा को निद्रा नाम को भी नहीं आती थी। किसी भी समय उठकर देखो तो मामा भावावस्था में किसी से बातचीत कर रहे हैं या पंचवटी के नीचे ध्यानस्थ बैठे हैं।

हृदय को इन बातों से तरह-तरह की शंकायें भी होती थीं। लेकिन दूसरों से यह बात बताने की हिम्मत नहीं होती थी। क्योंकि वह सोचते थे कि किसी से बताने पर यह बात बाबू के कान तक भी पहुंच जाय और कोई अनिष्टकारी परिणाम हो जाय।

लेकिन नित्य ही ऐसी बातें होने से यह बात छिप न सकी और बहुत लोग इन बातों के विषय में जान गए।

मथुर बाबू को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने कहा, 'मैं स्वयं आकर सब बातें देखूंगा, तब तक भट्टाचार्यजी[1] को वैसी ही पूजा करने दी जाय।'

जब यह बात दूसरे लोगों को मालूम हुई तो सब कहने लगे, 'अब भट्टाचार्य की नौकरी निश्चय ही छूट जायेगी। अपनी पूजा में देवी कितने दिनों तक भ्रष्टाचार सहन करेगी?'

एक दिन बिना किसी को बताये मथुर बाबू पूजा के समय आकर श्री रामकृष्ण के कार्यों को देखते रहे। भाव में तन्मय होने के कारण श्री रामकृष्ण का ध्यान उधर नहीं गया। पूजा के समय ध्यान पूरी तरह जगदम्बा की ओर ही रहने के कारण मन्दिर में कौन आया, कौन गया, इस बात का ध्यान उन्हें कभी नहीं रहता था। मथुर की समझ में यह बात थोड़ी ही देर में आ गई। उसके बाद जगदम्बा के साथ श्री रामकृष्ण का बालकों के समान व्यवहार देखकर वह समझ गए कि यह सब प्रेम भक्ति के

1. दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के पुजारी को भट्टाचार्य कहने की प्रथा थी।

कारण ही है। उन्हें यह मालूम पड़ा कि इस प्रकार के निष्कपट भक्ति विश्वास से भी यदि जगदम्बा प्रसन्न न होगी तो फिर भला किस उपाय से होगी।

पूजा करते समय श्री रामकृष्ण की आंखों से बहती हुई अश्रुधारा उनका अदम्य उत्साह, उनकी भावतन्मयता आदि देखकर मथुर का हृदय आनन्द और भक्ति से भर आया। उन्हें ऐसा लगा जैसे मन्दिर में सचमुच दिव्य प्रकाश भरा हो। उनको विश्वास हो गया कि बाबा को सचमुच देवी का दर्शन हो गया है। कुछ देर बाद वह भक्तिपूर्ण हृदय से और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से श्री जगदम्बा को और उसके उस अपूर्व पुजारी को दूर ही से बारम्बार प्रणाम करते हुए कहने लगे, 'आज इतने दिनों में देवी की यथार्थ प्रतिष्ठा हुई है और इतने दिनों में अब उसकी सच्ची पूजा होने लगी है।' इतना कहकर मथुर बाबू किसी से कुछ कहे बिना चुपचाप अपनी हवेली पर वापस आ गए। दूसरे दिन मन्दिर के प्रधान कर्मचारी को उनका हुक्म मिला, 'भट्टाचार्य महाशय जैसी चाहें वैसी पूजा करें। उनसे कोई कुछ भी छेड़छाड़ न करें।'

श्री रामकृष्ण की इस प्रकार की अद्‌भुत पूजा देखकर अपने घर लौटने पर मथुर बाबू ने सारा वृतान्त रानी रासमणी से कह दिया। रासमणी रानी को यह बात सुनकर सुखद आश्चर्य हुआ। श्री रामकृष्ण के मुख से भक्तिपूर्ण भजन सुनकर उनके प्रति पहले से ही उनका आदरभाव था। इसके अति-रिक्त जब गोविन्द जी की प्रतिमा भंग हुई थी, उस समय भी उनके भक्ति-पूर्ण हृदय का थोड़ा बहुत परिचय उन्हें हुआ ही था। इस बात से उन्हें भी सत्य लगा कि श्री रामकृष्ण के समान सरल, पवित्र और भक्ति वाले पुरुष पर श्री जगदम्बा की कृपा होना स्वाभाविक ही है, इसलिए उन्होंने भी इस प्रकार के अद्‌भुत पुजारी का कार्यकलाप स्वयं देखने के लिए एक दिन दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय किया।

अपने निश्चयानुसार एक दिन रानी रासमणी स्वयं देवालय पहुंच गई। उनके आगमन से नौकर-चाकरों में बड़ी हड़बड़ी मच गई। सदा के कामचोर लोग भी आज अपना काम बहुत दिल लगाकर कर रहे थे। घाट पर जाकर रानी ने गंगा स्नान किया और फिर देवालय में आई। श्री जग-

दम्बा की पूजा उसी समय समाप्त हुई थी। श्री जगदम्बा को प्रणाम करके रानी मूर्ति के समीप बैठ गई और श्री रामकृष्ण को समीप खड़ा देखकर उनसे दो-एक पद गाने को कहा। श्री रामकृष्ण तुरन्त ही रानी के पास बैठकर अत्यन्त तन्मयता के साथ रामप्रसाद, कमलाकान्त आदि साधकों के भक्तिपूर्ण पद गाने लगे। कुछ पद गाने के बाद उन्होंने एकाएक गाना बन्द कर दिया और बड़े क्रोध से बोले—'यहाँ भी संसार के विचार! यहाँ भी संसार के विचार!' इसके साथ ही उन्होंने अकस्मात रानी के दो तमाचे लगा दिए। अपने बालक को गलती करते देखकर पिता जिस तरह क्रुद्ध होकर उसकी ताड़ना करता है, उसी तरह श्री रामकृष्ण का यह आचरण था।

इस विचित्र कार्य को देखकर आसपास खड़े हुए नौकरों में हलचल मच गई। कोई-कोई एकदम श्री रामकृष्ण को पकड़ने दौड़ पड़े। देवालय में यह गड़बड़ देखकर बाहर से नौकर लोग भी दौड़ते हुए भीतर आने लगे और तरह-तरह की बकवास शुरू कर दी। परन्तु इस गड़बड़ के मुख्य कारण—श्री रामकृष्ण और रानी रासमणी दोनों ही बिल्कुल शान्त बैठे रहे। इस सारे कोलाहल की ओर श्री रामकृष्ण का ध्यान बिल्कुल नहीं था। वे तो अपने ही विचार में मग्न थे जो रानी आश्चर्य में भरकर सोच रही थी कि मेरे मन में जो विचार उत्पन्न हो रहे हैं; उनका पता श्री रामकृष्ण को कैसे लग गया। नौकर-चाकरों की धूमधाम और कोलाहल अधिक बढ़ जाने पर रानी का ध्यान उस ओर गया। वे समझ गईं कि ये लोग निरपराध श्री रामकृष्ण को मारना चाहते हैं, इसलिए उन्होंने गम्भीर स्वर में आज्ञा दे दी, 'भट्टाचार्य का कोई अपराध नहीं है। तुम कोई भी उन्हें किसी प्रकार का कष्ट मत दो।' बाद में मथुर बाबू के कान में भी यह बात पहुंची, तब उन्होंने भी रानी की आज्ञा कायम रखी। इस घटना से वहां किसी-किसी को बड़ा दुख हुआ, पर उपाय ही क्या था?

श्री जगदम्बा के चिन्तन में ही सदैव निमग्न रहने के कारण उस समय श्री रामकृष्ण के मन में भक्ति और आनन्दोल्लास की मात्रा इतनी अधिक हो गई थी कि श्री जगदम्बा की पूजा-अर्चना आदि नित्य कार्य किसी प्रकार निपटाना भी उनके लिए असम्भव हो गया था।

देवी की नित्य-नियमित पूजा-अर्चना श्री रामकृष्ण द्वारा होना असम्भव जानकर मथुर बाबू ने उस कार्य के लिए दूसरा प्रबन्ध कर दिया। श्री रामकृष्ण के चचेरे भाई रामतारक इसी समय काम ढूंढ़ते हुए दक्षिणेश्वर आए थे। उन्हीं को मथुर बाबू ने श्री रामकृष्ण के आराम होने तक उनके स्थान पर नियुक्त कर दिया। यह बात सन् 1858 की है।

जब श्री रामकृष्ण के पुजारी का कार्य छोड़ने का समाचार कामारपुकुर में उनकी माता और भाई को मिला, तब उनके मन में बड़ी चिन्ता हुई कि अब क्या करना चाहिए। रामकुमार की मृत्यु के दो ही वर्ष बाद गदाधर को वायुरोग पीड़ित जानकर उनकी माता और भाई पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। श्री रामकृष्ण के भक्ति उन्माद को सभी लोग वायुरोग का प्रकोप समझ रहे थे।

गदाधर से उनकी माता चन्द्रादेवी बहुत प्रेम करती थीं। इसलिए जब उन्होंने यह समाचार सुना तो श्री रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर से अपने गांव बुला लिया। परन्तु गांव जाने पर भी श्री रामकृष्ण की उदासीनता और व्याकुल भाव कायम रहे। दिन-रात वे 'माता-माता' कहकर चिल्लाया करते थे। यह सब देखकर माता ने औषधि, मंत्र-तंत्र, टोना-टोटका आदि अनेक प्रकार के उपचार शुरू किए।

घर जाने पर श्री रामकृष्ण का व्यवहार वैसे तो बहुधा पहले के ही समान था, किन्तु बीच-बीच में वह ईश्वर दर्शन की उत्कंठा से व्याकुल हो उठते थे। इसी तरह इन्हें गात्र-दाह के कारण कभी-कभी बहुत कष्ट भी होता था।

उस समय श्री रामकृष्ण का तेईसवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ था। कामारपुकुर आने के कुछ महीनों बाद उनकी व्याकुलता बहुत कम हो गई। इसका कारण यह था कि यहां आने के बाद उन्हें बार-बार श्री जगदम्बा के अद्भुत दर्शन हुआ करते थे।

कामारपुकुर के पश्चिम में दो श्मशान हैं। उनमें से किसी एक में, दिन या रात को, समय मिलने पर श्री रामकृष्ण अकेले ही जाकर बैठे रहते थे।

उनके रिश्तेदारों को उसी समय उनमें किसी तरह की विलक्षण शक्ति होने का आभास हुआ। रामकृष्ण श्मशान के सियार, भूत-प्रेत आदि को देने के लिए नये पात्र में फल-मूल, मिष्ठान्न आदि रखकर श्मशान में अपने साथ ले जाया करते थे। श्री रामकृष्ण लोगों से कहते थे कि भूतों को उस पात्र का खाद्य देने से वह पात्र भुर्र से आकाश में उड़कर अदृश्य हो जाता है और कभी-कभी तो भूत-प्रेत ही मुझे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी रात के 12-1 बज जाते थे, लेकिन रामकृष्ण का कहीं पता नहीं रहता था। तब बेचारे रामेश्वर श्मशान की ओर जाकर दूर से श्री रामकृष्ण को पुकारते थे। श्री रामकृष्ण पुकार सुनकर उत्तर देते थे और वहीं से कहते थे, 'आया दादा आया? तुम वहीं ठहर जाओ। आगे मत बढ़ो, नहीं तो ये भूत तुम्हें कुछ कष्ट देंगे।'

उनमें से एक श्मशान में श्री रामकृष्ण ने बेल की एक कलम लगाई थी। उसी श्मशान में एक पुराने पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर वे बहुत-सा समय जप-तप ध्यान में बिताते थे। इन सब बातों से लगता है कि उन्हें इस समय कुछ अपूर्व दर्शन और साक्षात्कार हो जाने से श्री जगदम्बा के दर्शन के लिए उनके अन्तःकरण की तीव्र व्याकुलता बहुत ही कम हो गई थी।

श्री रामकृष्ण के व्यवहार और बोलचाल को देखकर उनके घर के लोगों को यह मालूम पड़ने लगा कि उन्हें जो वायुरोग हो गया था वह अब बहुत कम हो गया है, क्योंकि अब वे पहले के समान व्याकुल होकर रोते हुए नहीं दिखाई पड़ते थे। उनका खान-पान नियमित समय पर होता था तथा उनके अन्य व्यवहार भी दूसरे मनुष्यों के समान सामान्य थे। उन्हें यही बड़े आश्चर्य की बात मालूम होती थी कि वे श्मशान में जाकर बहुत समय तक बैठते हैं, कभी-कभी अपने शरीर का कपड़ा खोलकर फेंक देते हैं और निर्लज्जता से ध्यान-पूजा आदि करने लगते हैं। लेकिन इन सब बातों से घर वाले विशेष चिन्तित नहीं थे। उन लोगों की वास्तविक चिन्ता का कारण यह था कि श्री रामकृष्ण सांसारिक विषयों के प्रति बिल्कुल उदासीन हो गए थे। घर वाले सोचते थे कि जब तक इनका ध्यान पूरी तरह संसार में नहीं लगता और इनकी उदासीनता कम नहीं होती, तब तक इनके वायुरोग के पुनः लौट आने की सम्भावना है, इसीलिए श्री रामकृष्ण का ध्यान

संसार की ओर खींचने की चिन्ता इनकी माता और भाई को सदैव लगी रहती थी। अन्त में सब तरह से विचार करने के बाद माता और भाई ने यही निश्चय किया कि अब गदाधर का विवाह कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है। सुशील और रूपवती पत्नी पा जाने के बाद उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होगा और तब इसका मन इधर-उधर नहीं भटकेगा।

यह विचार निश्चित हो जाने के बाद कन्या ढूंढ़ना शुरू हुआ। इस सम्बन्ध में उन लोगों ने गदाधर को कुछ नहीं बताया, क्योंकि उन लोगों का विचार था कि गदाधर इस विषय में बाधा डालेगा लेकिन तीक्ष्ण बुद्धि के श्री रामकृष्ण को अपने आप ही यह बात मालूम हो गई। उसके बाद जब विवाह की पक्की बात उनके कान में पड़ी तब भी उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी अनिच्छा नहीं प्रगट की, वरन् घर में कार्य होने पर जिस प्रकार छोटे-छोटे बालक आनन्द मनाते हैं, उसी प्रकार का व्यवहार श्री रामकृष्ण भी करने लगे। वास्तव में श्री जगदम्बा के कानों में उन्होंने यह बात डाल दी थी और इस विषय में अपना कर्तव्य जानकर वह ऐसा आचरण करते थे।

श्री रामकृष्ण की माता और बड़े भाई ने आस-पास के गांवों में बहुत-सी कन्यायें देखीं, पर किसी न किसी कारण से विवाह कहीं भी पक्का न हो सका। चन्द्रादेवी को बड़ी चिन्ता होने लगी कि गदाधर का विवाह किस प्रकार ठीक किया जाए। उनका मन घर के काम-काज में नहीं लगता था। इसी तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन भावावेश में श्री रामकृष्ण बोल उठे—'कन्या ढूंढ़ने के लिए व्यर्थ इधर-उधर भटकने से कोई लाभ नहीं। जयरामवटी ग्राम में रामचन्द्र मुखोपाध्याय के यहां जाओ। वहां विवाह के लिए कन्या तैयार मिलेगी।'

श्री रामकृष्ण के इन शब्दों पर किसी को एकदम विश्वास नहीं हुआ। लेकिन चन्द्रादेवी ने सोचा, जैसे इतने स्थान देखे हैं, वैसे यह भी सही, इसलिए पता लगाने के लिए किसी को जयरामवटी भेजा गया। उसने आकर बताया, बाकी बातें चाहे कुछ हों, लेकिन लड़की बहुत छोटी है। उसको अभी हाल में छठवां वर्ष लगा है। लेकिन अन्य कहीं निश्चित न

होने के कारण चन्द्रादेवी ने वही लड़की पसंद की और विवाह का मुहूर्त निश्चित हुआ। उस दिन रामेश्वर अपने भाई को लेकर जयरामवटी गया और वहाँ विधिपूर्वक विवाह कराके अपने भाई के साथ घर लौट आया। यह ईस्वी सन् 1859-60 के वैशाख कृष्ण पक्ष की बात है। श्री रामकृष्ण को उस समय चौबीसवाँ वर्ष लगा था।

अपने पुत्र को विवाहित देखकर चन्द्रादेवी का हृदय शान्त हुआ और यह आशा होने लगी कि अब मेरे पुत्र का मन संसार और गृहस्थी की ओर थोड़ा-बहुत लगेगा। लेकिन इस विवाह में वधु को पहनाने के लिए गांव के जमींदार से गहने मांगकर लाए गए थे। चन्द्रादेवी का हृदय यह सोचकर फटा जा रहा था कि अब ये गहने वापिस करने होंगे। विवाह के दिन से ही वह वधु को अपने घर ले आई थीं और उसके साथ एकदम पुत्रीवत् व्यवहार करने लगी थीं। अब उसके शरीर पर से गहना उतारते उन्हें बड़ा कष्टकर लगा। यद्यपि यह बात उन्होंने किसी से बताई नहीं लेकिन यह बात गदाधर जान गए। उन्होंने माता को इस सम्बन्ध में सांत्वना दी और एक रात को जब उनकी पत्नी सो गई तो सावधानीपूर्वक उन्होंने उसके शरीर से सब गहने उतार लिए और उन्हें अपनी माता के सामने लाकर रख दिया। माता ने सवेरे ही उन्हें जहां के तहां पहुंचा दिए। किन्तु यह बात यहीं पर समाप्त न हुई। प्रातःकाल उठने पर उस बालिका ने अपने शरीर पर गहने न देखकर अपनी सास से पूछा, 'माँ मैं कल जो गहने पहने थी वे कहां हैं ?' यह सुनकर चन्द्रादेवी का हृदय भर आया और वह बालिका को अपनी गोदी में बैठाकर पुचकारकर कहने लगीं, बेटी मेरा गदाधर तुझे इनसे भी सुन्दर गहने बनवा देगा। उस दिन लड़की का काका भी उससे भेंट करने आया था। उसे इन गहनों के उतरवाने का वृतान्त मालूम होते ही बड़ा क्रोध आया और वह लड़की को अपने साथ लेकर जयरामवटी रवाना हो गया। इससे चन्द्रादेवी को बड़ा दुःख हुआ। श्री रामकृष्ण ने उन्हें यह कहकर सांत्वना दी, 'अब चाहे कुछ भी हो, एक बार जो विवाह हो गया वह किसी के तोड़ने से टूट तो नहीं सकता ? फिर कौनसी चिन्ता है।'

विवाह के बाद लगभग 6-7 मास तक श्री रामकृष्ण कामारपुकुर में ही रहे। घर की अवस्था को देखकर एवं वहां रहते हुए काफी दिन बीत

जाने के कारण उन्होंने कलकत्ता वापस जाने का इरादा किया । माता को यह विचार पसंद नहीं आया, क्योंकि उन्हें चिन्ता थी कि अभी इसका वायुरोग अच्छा हो ही रहा है, और ऐसे समय में वहां जाने से यदि रोग पुनः उखड़ पड़ा तो क्या होगा? लेकिन श्री रामकृष्ण उन्हें किसी तरह समझा-बुझाकर उनसे विदा लेकर दक्षिणेश्वर वापस आ गए और अपने काम में लग गए ।

लौटने के थोड़े ही दिन बाद वे अपनी पूजा के काम में पुनः ऐसे तन्मय हो गए कि माता, भाई, स्त्री संसार, अपनी स्थिति और कामारपुकुर की सब बातें बिलकुल भूल गए । जगदम्बा का सदा सर्वकाल दर्शन कैसे हो, एक विचार उनके मन में घूमने लगा । रात-दिन नाम स्मरण, मनन, जप, ध्यान में ही निमग्न रहने के कारण उनका वक्षस्थल पुनः हर समय आरक्त रहने लगा । सभी सांसारिक बातें पुनः विषवत होने लगीं । सारे शरीर में पुनः विलक्षण दाह होने लगा और आंखों की नींद पुनः न जाने कहां भाग गई । अन्तर इतना ही कि उन्हें इस प्रकार की अवस्था पूर्व अनुभव रहने के कारण पहले के समान उनका चित्त इस समय डावांडोल नहीं हुआ ।

दिन पर दिन बीतने लगे । मथुर बाबू और श्री रामकृष्ण से प्रेम करने वाले अन्य लोगों ने अपनी ओर से प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर दी, परन्तु रोग कम न होकर धीरे-धीरे बढ़ता ही गया ।

कुछ दिनों बाद यह बात कामारपुकुर पहुंची । बेचारी चन्द्रादेवी अपने प्यारे पुत्र गदाधर के रोग के पुनः बढ़ने का समाचार पाकर पागल के समान हो गई । उन्होंने अपनी ओर से बहुत से देवी-देवताओं की मानता की ।

श्री रामकृष्ण की अन्ध सहज प्रेरणा ने प्रारम्भ से ही अज्ञात रूप से शक्तिमार्ग का आश्रय लिया था । परन्तु वह इस पथ के टेढ़े-मेढ़ेपन व छिपी झाड़ियों से परिचित न थे । उनका उन्मत्त हृदय और उनकी टांगें जहां ले जातीं वहीं वह जाते रहे और अन्त में ऐसे अवसर भी आये, जब किसी सहायक व पथप्रदर्शक के न होने के कारण वह एकदम बेचैन हो उठे । इस हालत में जब वह अपने अन्तिम कठोर पड़ाव पर पहुंच गए थे, तब एक स्त्री के द्वारा उन्हें सहायता प्राप्त हुई ।

एक दिन श्री रामकृष्ण ऊंचे तट पर खड़े हुए रंग-बिरंगी पतवारों के

साथ गंगा की लहरों पर इधर-उधर तैरती हुई नौकाओं को देख रहे थे, तभी उन्होंने देखा, एक नौका ठीक उनके तट के नीचे आकर रुक गई और उसमें से एक स्त्री उतर कर ऊपर चढ़ आई। वह सुन्दर और दीर्घकाय थी। उसके लम्बे खुले केश पीछे लटक रहे थे और वह संन्यासी के गेरुवे वस्त्र पहने हुए थी। उसकी आयु पैंतीस से चालीस वर्ष के बीच थी, परन्तु देखने में वह कम आयु की मालूम हो रही थी। उसके चेहरे को देखकर श्री रामकृष्ण विस्मित हो गए और उसे अपने निकट बुलाया। रामकृष्ण को देखते ही उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे और उसने कहा।

'वत्स ! न जाने कितने दिनों से मैं तुम्हें तलाश रही हूं।'

वह बंगाल के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार की सन्तान थी और विष्णु की उपासिका थी। वह अत्यन्त सुशिक्षित तथा धर्मशास्त्रों, विशेषतः भक्ति-शास्त्र की पूर्ण पंडित थी। उसने कहा कि वह एक ऐसे मनुष्य की तलाश में है जो भगवत्प्रेरणा से आदिष्ट हो। उसकी अन्तरात्मा ने उसे यह निश्चय करा दिया है कि ऐसे व्यक्ति का जन्म हो चुका है और उस व्यक्ति को एक विशेष सन्देश देने का भार उसे सौंपा गया है। इस महिला को सभी लोग भैरवी ब्राह्मणी के नाम से जानते थे। श्री रामकृष्ण व भैरवी ब्राह्मणी में उसी स्थान पर माता पुत्र का सम्बन्ध स्थापित हो गया। श्री रामकृष्ण ने एक बालक के समान पूर्ण विश्वास के साथ भैरवी ब्राह्मणी को अपने भागवत जीवन के समस्त कष्टमय अनुभव, अपनी साधना और उसके साथ ही अपनी शारीरिक व मानसिक यातनायें भी सुना दीं। श्री रामकृष्ण ने भैरवी से कहा कि बहुत से लोग उन्हें पागल कहते हैं और फिर बड़ी नम्रता एवं उत्सुकता से उससे पूछने लगे, क्या यह सत्य है ? भैरवी ने श्री रामकृष्ण की सारी बातें सुनकर माता के समान स्नेह-भरे स्वर में उन्हें सांत्वना दी और कहा कि उन्हें किसी प्रकार के भय की आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह अपने प्रयत्नों से ही भक्तिशास्त्र में वर्णित साधना के एक स्तर पर पहुंच गए हैं। भैरवी ने उनके शारीरिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया और उनके मानसिक अन्धकार को दूर कर दिया।

वह बड़े स्नेह के साथ श्री रामकृष्ण से बोली, 'बाबा ! तुम्हें कौन पागल कहता है ? यह पागलपन नहीं है। यह तो महाभाव है। इसी कारण

तुम्हारी ऐसी अवस्था हुई है। क्या इस अवस्था को समझना भी किसी के लिए सम्भव है? इसी कारण वे बेचारे तुमको पागल कहते हैं। ऐसी अवस्था हुई थी एक तो श्रीमती राधिका की और दूसरी श्री चैतन्य महाप्रभु की। ये सब बातें भक्तिशास्त्र में हैं। मेरे पास वे सब पोथियां हैं। उनमें से मैं तुम्हें दिखा दूंगी कि जो कोई पूर्ण अन्तःकरणपूर्वक ईश्वर की भक्ति करते हैं, उनकी ही ऐसी अवस्था होती है।

इस तरह उन दोनों में पहले ही दिन जो प्रेम और वात्सल्य भाव उत्पन्न हुआ था, वह दिनोंदिन बढ़ता गया।

भक्त को प्रेम के मार्ग से ही ज्ञान होता है। वह प्रारम्भ में भगवान की किसी एक विशिष्ट मूर्ति को ही अपने आदर्श के रूप में स्वीकार कर लेता है। श्री रामकृष्ण ने माँ को ही अपने आदर्श के रूप में स्वीकार किया था। बहुत समय तक वे अपने इस एकनिष्ठ प्रेम में ही निमग्न रहे। प्रारम्भ में वह अपनी भक्ति व श्रद्धा के लक्ष्य को प्राप्त न कर सके परन्तु धीरे-धीरे वे ऐसे देखने, स्पर्श करने व इससे वार्तालाप करने में समर्थ हो गए। उसके बाद भगवान का जीवित अस्तित्व अनुभव करने के लिए क्षणिक मनोनिवेश ही उनके लिए पर्याप्त होता था। सब वस्तुओं व सब आकृतियों के अन्दर भगवान का वास है, यह विश्वास हो जाने पर श्री रामकृष्ण ने यह अनुभव किया कि भगवान के अनेक रूप उनकी प्रियतम मां की मूर्ति में से प्रगट हो रहे हैं। इस दिव्य बहुरूपता से उनकी दृष्टि ओत-प्रोत हो गई और अन्त में इसके मधुर संगीत से वे इस प्रकार परिपूर्ण हो गए कि उनके अन्दर अन्य किसी वस्तु के लिए कोई स्थान शेष नहीं रहा। भौतिक संसार उनकी दृष्टि से विलुप्त हो गया।

भैरवी ने, जिसे कि उन्होंने अपनी आध्यात्मिक माता व गुरु तथा शिक्षक के रूप में स्वीकार किया था, ज्ञान का सही रास्ता एवं ईश्वर का वास्तविक रूप दिया। भैरवी स्वयं धर्मानुष्ठान व साधनाओं में प्रवीण थी और ज्ञान के सब मार्गों से परिचित थी, इसलिए विभिन्न साधनों के मार्गों की एक-एक करके शास्त्रोक्त विधि के अनुसार परीक्षा करने के लिए उसने श्री रामकृष्ण को प्रोत्साहित किया। यहाँ तक कि वह तांत्रिक साधना, जो सबसे अधिक खतरनाक है और जिसमें इन्द्रिय और आत्मा का रक्त-मांस

की अनुभूति व कल्पना पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने को उनके प्रभाव में छोड़ना होता है, वह भी उसने श्री रामकृष्ण को सिखला दी, परन्तु यह मार्ग अत्यन्त पिच्छल तथा दुर्गम है, जिससे गुजरते हुए हर समय अध:पतन तथा पागलपन की गम्भीर खन्दक में गिरने का भय है। इस पथ पर चलने का जिन्होंने भी साहस किया है, उनमें से बहुत ही कम व्यक्ति वापस जा सके हैं, परन्तु पवित्र श्री रामकृष्ण उक्त पथ पर यात्रा करने से पूर्व जिस प्रकार निष्कलंक अवस्था में बल्कि अग्नि में तपाये हुए इस्पात के समान पहले से भी दृढ़तर होकर वापिस आये।

प्रेम के द्वारा भगवान से मिलने के जितने भी तरीके हैं, उन सब पर श्री रामकृष्ण का पूरा अधिकार हो गया। दिव्य नगर दुर्ग के सब पार्श्वों पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली और वह व्यक्ति जो भगवान पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह भगवत प्रकृति का अंश भी ग्रहण कर लेता है।

श्री रामकृष्ण की दीक्षा गुरु भैरवी ने श्री रामकृष्ण के अन्दर भगवान के अवतार का दर्शन किया। इसलिए उसने दक्षिणेश्वर में पण्डितों की एक सभा बुलाई, जिसमें विद्वानों के पाण्डित्यपूर्ण वाद-विवाद के पश्चात भैरवी ने धार्मिक सम्प्रदायों आचार्यों से यह अनुरोध किया कि वह श्री रामकृष्ण को नव अवतार के रूप में घोषित करे।

इसके बाद उनकी ख्याति दिनोंदिन बढ़ने लगी। चारों तरफ दूर-दूर से उस आश्चर्यजनक व्यक्ति के दर्शन के लिए, जिसने न केवल एक ही साधना में अपितु साधना के सभी मार्गों पर आधिपत्य प्राप्त किया था, दर्शकगण आने लगे। इस समय श्री रामकृष्ण ने सब मार्गों के सन्धिस्थल पर बैठकर उन पर अपना अधिकार जमा लिया था।

सन् 1865 के अन्त में श्री तोतापुरी का दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ। अन्य साधनाओं के समान वेदान्त साधना के समय भी श्री रामकृष्ण को गुरु ढूंढ़ना नहीं पड़ा। स्वयं गुरु ही उनके पास आ पहुँचे।

श्रीमन् परमहंस तोतापुरी जी, अच्छे, ऊँचे पूरे दीर्घाकृति के भव्य पुरुष थे। लगातार चालीस वर्षों की दीर्घ तपस्या द्वारा उन्होंने निर्विकल्प समाप्ति की अवस्था प्राप्त की थी, तथापि वह अपना बहुत-सा समय ध्यान, धारणा और समाधि में ही बिताते थे। वे सदा नग्न ही रहते थे। तोता-

पुरी कभी घर में नहीं रहते थे। नागा सम्प्रदाय के होने के कारण वे अग्नि-पूजा किया करते थे। नागापंथी साधु लोग अग्नि को बहुत पवित्र मानते हैं और वे जहां कहीं जाते हैं, अपने पास अग्नि निरन्तर प्रज्वलित रखते हैं, जिसका सामान्य नाम धूनी है। एक लोटा, एक चिमटा और एक आसन यही श्री तोतापुरी का सामान था। वे एक लम्बी-चौड़ी चादर से अपने शरीर को सदा लपेटे रहते थे। अपने लोटे और चिमटे को रोज घिसकर मांजते थे और चमकीला बनाये रखते थे।

नर्मद तीर से प्रस्थान करके गंगा-सागर का स्थान और श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ जी की यात्रा करके घूमते-घूमते श्री तोतापुरी परमहंस जी पंजाब में अपने मठ को वापस जाते हुए रास्ते में दक्षिणेश्वर में उतरे थे। वहां दो-तीन दिन रहकर आगे जाने का उनका विचार था।

काली मन्दिर में आकर श्री तोतापुरी पहले घाट पर गए। वहां एक किनारे अन्य लोगों के समान ही एक वस्त्र लपेटकर श्री रामकृष्ण ईश्वर ध्यान में तल्लीन बैठे थे। उनके तेज पुंज और भावोज्ज्वल मुखाकृति की ओर दृष्टि जाते ही तोतापुरी को निश्चय हो गया कि यह असाधारण पुरुष हैं। वेदान्त साधना के लिए इतना उत्तम अधिकारी विरला ही दिखाई देता है। उन्होंने मन ही मन कहा, 'तंत्रमार्गी बंगाल में वेदान्त का ऐसा अधिकारी पुरुष मिलना आश्चर्य की बात है।' ऐसा सोचकर वह श्री रामकृष्ण के पास गए और बारीकी से उनका निरीक्षण करने के बाद बोले, 'तुम उत्तम अधिकारी प्रतीत हो रहे हो, क्या तुम वेदान्त साधना करना चाहते हो?'

श्री रामकृष्ण ने सरलता से उत्तर दिया—'मैं वेदान्त साधना करूं या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता—यह सब मेरी माँ जाने। मां कहेगी तो करूंगा।'

तोतापुरी ने कहा—'तो फिर जा, अपनी मां से पूछकर शीघ्र आ। क्योंकि मुझे यहां अधिक दिन तक रहने का अवकाश नहीं है।'

श्री रामकृष्ण सीधे जगदम्बा के मन्दिर में चले गये। वहां भावाविष्ट अवस्था में श्री जगदम्बा ने कहा—'जाओ सीखो। तुम्हें सिखाने के लिए ही संन्यासी का यहां आगमन हुआ है।'

श्री रामकृष्ण वहाँ से उठकर बड़े हर्ष से तोतापुरी के पास आए और अपनी मां की आज्ञा प्राप्त होने का वृतान्त उन्होंने उनसे बताया। अब कहीं तोतापुरी को मालूम हुआ कि मन्दिर की देवी को ही यह प्रेम से मां कहता है।

तोतापुरी ने श्री रामकृष्ण से कहा—'वेदान्त साधना की दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व तुझे शिखा-सूत्र का त्याग करके यथाशास्त्र संन्यास ग्रहण करना होगा।' श्री रामकृष्ण ने कुछ विचार के बाद उत्तर दिया, 'यदि यह सब गुप्त रीति से हो सके तब तो ठीक है, पर प्रगट रूप में संन्यास लेने पर मेरी वृद्धा माता को बड़ा दुख होगा और उसका दुख मुझसे देखा नहीं जा सकता।' तोतापुरी ने उनका कहा मान लिया और कहा, 'शुभ मुहूर्त होने पर तुमको गुप्त रूप से संन्यास दूंगा।' तत्पश्चात् वे काली मन्दिर के उत्तरी भाग में रमणीय पंचवटी के नीचे आसन बिछाकर बैठ गए।

फिर शुभ मुहूर्त देखकर तोतापुरी ने श्री रामकृष्ण को अपने पितृ पुरुषों की तृप्ति के लिए श्राद्धादि क्रिया करने को कहा। उसकी समाप्ति होने पर इनसे अपने स्वयं का भी श्राद्ध यथाविधि कराया। इसका कारण कि संन्यास ग्रहण के समय से ही साधक को 'भूः' आदि सब लोकों की प्राप्ति की आशा और अधिकार त्याग देना पड़ता है, अतः उसके पूर्व ही साधक को अपना श्राद्ध कर डालना चाहिए, यही शास्त्र की आज्ञा है।

श्री रामकृष्ण जिसे गुरु कहते थे उस पर पूर्ण भरोसा रखकर उसी के कहने के अनुसार अक्षरशः कार्य करने का उनका स्वभाव था, इसलिए तोतापुरी ने जैसी आज्ञा दी, उसका अक्षरशः पालन किया। श्राद्धादि पूर्व-कृत्य समाप्त होने पर उन्होंने व्रत किया और गुरु की बताई हुई सब सामग्री को एकत्र करके उन्हें पंचवटी के नीचे अपनी साधना कुटी में ठीक तरह से रख दिया और वह उत्कंठा पूर्वक शुभ मुहूर्त की राह देखने लगे।

रात बीत गई। शुभ ब्राह्म मुहूर्त का समय देखकर गुरु शिष्य की यह अलौकिक जोड़ी उस शान्त और पवित्र साधना कुटी में प्रविष्ट हुई। उसके बाद शास्त्रानुसार दीक्षा और साधना प्रारम्भ हुई।

अन्य शास्त्रोक्त कर्म एवं हवनादि कराने के बाद तोतापुरी ने श्री रामकृष्ण को समाधि लगाने को कहा। समाधि लग जाने पर बहुत देर

तक तोतापुरी उनके पास ही बैठे रहे। बाद में धीरे से उस पवित्र कुटी के बाहर आकर उन्होंने किवाड़ बन्द करके ताला लगा दिया जिससे कोई मनुष्य वहाँ जाकर उनके शिष्य को कष्ट न दे। वे स्वयं ही पंचवटी के नीचे अपने आसन पर शान्तिपूर्वक बैठकर प्रतीक्षा करने लगे कि श्री रामकृष्ण किवाड़ खोलने के लिए कब पुकारते हैं।

लेकिन लगातार तीन दिन हो गए तो भी किवाड़ खुलवाने के लिए श्री रामकृष्ण की पुकार सुनाई नहीं दी। अब तो तोतापुरी को बहुत आश्चर्य हुआ और वे अद्‌भुत शिष्य की अवस्था देखने की उत्सुकता से धीरे से किवाड़ खोलकर कुटी के भीतर गए। वहाँ देखा कि उनका शिष्य तीन दिनों पूर्व समाधि लगाते समय जैसा बैठा था वैसा ही बैठा है। देह में प्राणों का बिल्कुल चिह्न नहीं है, किन्तु उसका मुखमण्डल प्रशान्त, गम्भीर है और ज्योतिःपूर्ण है। बाह्य जगत के सम्बन्ध में अभी तक वह मृतप्राय बना है और उसका चित्त ब्रह्म में लीन होकर अवस्थान कर रहा है। यह अवस्था देखकर तोतापुरी चकित हो गए और अपने आप कहने लगे, 'मैं जो कुछ देख रहा हूं, क्या वास्तव में यह सत्य है? चालीस वर्ष तक कठोर साधना करने पर मुझे अपने जीवन में जिस वस्तु की उपलब्धि हुई है, क्या इस महापुरुष ने सचमुच एक ही दिन के अन्दर उस पर अपना अधिकार जमा लिया है?' यह शंका उन्हें हुई और उन्होंने श्री रामकृष्ण के शरीर के सभी लक्षणों का बारीकी से निरीक्षण किया। परन्तु हृदय की क्रिया एवं श्वासोच्छ्वास बन्द थे। तब उन्होंने श्री रामकृष्ण के उस काष्ठवत शरीर पर चुटकी काटकर देखा, पर उसका भी कोई परिणाम नहीं हुआ। तब तो तोतापुरी के आश्चर्य एवं आनन्द की सीमा न रही। आनन्द के आवेश में उनके मुंह से निकल पड़ा—यह क्या देवी माता—यह तो सचमुच समाधि है। वेदान्तोक्त ज्ञान मार्ग का चरम फल—निर्विकल्प समाधि और वह भी एक दिन के भीतर। भगवान की यह कैसी अद्‌भुत माया है।'

तत्पश्चात् अपने उस अलौकिक शिष्य को समाधि अवस्था से उठाने के लिए श्री तोतापुरी ने कोई एक क्रिया प्रारम्भ की और थोड़ी ही देर में 'हरिॐ' मन्त्र की गम्भीर ध्वनि से वह पवित्र पंचवटी गूंज उठी।

अपने शिष्य के असाधारण होने की जानकारी श्री तोतापुरी को प्रथम

भेंट के समय हो गई थी और अब तो उन्हें उनकी अलौकिकता का प्रत्यक्ष निश्चय हो गया, अतः उन्होंने अपने शिष्य को परमहंस की पदवी दे दी।

तीन दिन के बदले पूरे ग्यारह मास दक्षिणेश्वर में बिताकर और श्री रामकृष्ण से भी कुछ बातें सीखकर श्री तोतापुरी परमहंस वहां से 1866 में चले गए। उसके बाद श्री रामकृष्ण ने अपने मन में निश्चय किया कि अब इसके आगे निर्विकल्प अद्वैत भाव में ही रहना चाहिए। अब मैं, तू जगत आदि सर्व कल्पना छोड़कर श्री भगवान के अद्वैत, अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप में ही एक होकर रहना चाहिए। मन में कोई विचार आ जाने पर वह अधूरा छोड़ना जानते ही नहीं थे। अब भी वही बात हुई। वे निरन्तर समाधि अवस्था में ही रहने लगे। अन्य सब विषयों की बात तो दूर थी, उन्हें अब अपने शरीर का भी ज्ञान नहीं रहता था। खाने, सोने, शौचादि नित्य व्यवहार के कार्य करने का विचार भी उनके मन में उदय नहीं होता था। बोलना-चालना बिलकुल बन्द हो गया।

इस अवस्था में श्री रामकृष्ण लगातार 6 महीने रहे। इसी अवस्था में उन्हें रक्त आमांश हो गया। हृदय सदैव उनकी सेवा में लगा रहता था। मथुर बाबू ने सुप्रसिद्ध वैद्य गंगाप्रसादसेन से उनकी चिकित्सा शुरू करा दी और उनके पथ्य आदि का उचित प्रबन्ध किया।

उदरशूल और रक्त-आमांश से 6 महीने तक अत्यन्त पीड़ित रहने के बाद धीरे-धीरे श्री रामकृष्ण का स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ दिनों में वह पूर्ववत हो गए।

इसी समय उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि सभी धर्म भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा उसी परमात्मा की तरफ ले जाते हैं। इसलिए वह उन सब की छानबीन करने के लिए व्यग्र हो उठे। सर्व प्रथम मार्ग जिसकी उन्हें छानबीन करनी थी, वह इस्लाम धर्म था। सन् 1866 के अन्त में जब कि वे पूर्णतया स्वस्थ भी न हो पाए थे, उन्होंने उस पर चलना प्रारम्भ कर दिया।

मन्दिर से वे बहुत से मुसलमान मुसाफिरों को आते-जाते देखा करते थे। उदार हृदया, दक्षिणेश्वर की प्रतिष्ठात्री रानी रासमणि ने अपने मन्दिर के

साथ ही सभी धर्मों व वर्णों के अतिथियों के आश्रय के लिए एक अतिथि-शाला का भी निर्माण कराया था। वहीं पर एक दिन श्री रामकृष्ण ने गोविन्दराय नामक एक गरीब मुसलमान को पूजा-प्रार्थना करते देखा और उसके भूलुण्ठित शरीर के बाह्य पृष्ठ को ही देखकर उन्होंने जान लिया कि इस मनुष्य ने इस्लाम के द्वारा भगवान की उपलब्धि कर ली है। उन्होंने गोविन्द राय से दीक्षा देने के लिए कहा और कुछ दिनों के लिए वह काली का पुरोहित अपने सब देवताओं को एकदम भूल गया। उन्होंने उनकी पूजा करनी छोड़ दी, उनका विचार तक भी त्याग दिया। वे मन्दिर की सीमा से बाहर रहने लगे, अल्लाह का नाम जपने लगे और मुसलमानों की पोशाक धारण कर ली और पवित्र गौमाता के निषिद्ध गोमांस के भक्षण तक के लिए उद्यत हो गए। मथुर बाबू यह देखकर भयभीत हो गये और उनसे इस कार्य से विरत रहने के लिए प्रार्थना करने लगे। उन्होंने श्री रामकृष्ण को अववित्रता व भ्रष्टाचार से वचने के लिए एक मुसलमान के आदेशानुसार अपने एक ब्राह्मण से गुप्त रूप से भोजन बनवाकर देने की व्यवस्था कर दी। एक भिन्न विचारधारा के प्रति अपने पूर्ण आत्मसमर्पण के परिणामस्वरूप उन्हें गम्भीर मुद्रा धारण किए एक शुभ्रश्मश्रुधारा, ज्योतिर्मय पुरुष के दर्शन हुए। इस प्रकार सम्भवतः उन्हें पैगम्बर दृष्टिगोचर हुए। श्री रामकृष्ण ने इस तरह इस्लाम धर्म का मन्थन कर डाला। वहाँ से वह पुनः निर्गुण ब्रह्म में पहुँच गये।

श्री रामकृष्ण की बीमारी कुछ ही दिन पहले दूर हुई थी, पर इतने में ही वर्षा के दिन आ गए। वर्षा ऋतु में पीने के लिए स्वच्छ पानी न मिलने में कहीं पर उनका स्वास्थ्य फिर गड़बड़ न हो जाय, इसलिए मथुर बाबू आदि ने यह निश्चय किया कि श्री रामकृष्ण कुछ दिनों के लिए कामारपुकुर जाकर रहें। इस निश्चय के अनुसार सन् 1867 के मई मास में, कठिन रोग के आक्रमण से अत्यन्त दुर्बल होकर, आठ वर्ष बाद वे फिर अपनी जन्मभूमि में छः या सात मास के लिए विश्राम करने के लिए चले गये। भैरवी ब्राह्मणी भी उनके साथ गई थी, किन्तु बाद में श्री रामकृष्ण से उसका कुछ मन-मुटाव हो गया। बाद में उसने श्री रामकृष्ण से अपनी गलती के लिए क्षमा-याचना की और हमेशा के लिए उनसे विदा ले ली।

अपने छोटे से गदाधर को देखकर, जिसकी विचित्र ख्याति उन तक पहुंच चुकी थी और जिसके कारण वह उसके दर्शनों के लिए व्यग्र हो उठे थे, अत्यन्त प्रफुल्लित सीधे-सादे ग्रामवासियों की सहृदयता के बीच श्री रामकृष्ण एक बाल सुलभ आनन्द का अनुभव करने लगे।

इस ग्रामवास के अवसर पर उन्हें अपनी किशोरी स्त्री को समझने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी पत्नी श्रीमती शारदा मणि की आयु उस समय केवल चौदह वर्ष की थी। वह अपने माता-पिता के पास रहती थीं, परन्तु अपने पति के आगमन का समाचार सुनकर वह कामारपुकुर आ गईं। इस पवित्र हृदय किशोरी पत्नी का आध्यात्मिक विकास उसकी आयु की तुलना में कहीं अधिक था और उसने तत्काल अपने पति के उद्देश्य एवं उनके जीवन में जो विशुद्ध प्रेम तथा कोमल स्वार्थ शून्यता का भाग उसे अदा करना है, इसे खूब अच्छी तरह समझ लिया। वह उन्हें अपना पथ प्रदर्शक जानकर तन-मन से उनकी सेवा में लग गई।

शारदामणि के स्वार्थ को बलि देने के कारण श्री रामकृष्ण को काफी निन्दित एवं कठोर शब्दों को सहना पड़ा है, परन्तु शारदामणि ने अपने व्यवहार में इसका लेशमात्र भी कभी इंगित नहीं किया। शारदामणि के समस्त जीवन में जो व्यक्ति भी उनके सम्पर्क में आया उन सबको उन्होंने समान भाव से सौम्य एवं प्रशान्त किरणमाला के आलोक से आलोकित किया।

इसी समय श्री रामकृष्ण ने अपनी पत्नी से कथा था, 'मैं प्रत्येक स्त्री को माता की दृष्टि से देखता हूँ। यही भाव मैं तुम्हारे प्रति भी रख सकता हूँ। परन्तु यदि तुम अपने साथ विवाहित होने के कारण मुझे संसार में खींचना चाहती हो तो तुम्हारी सेवा के लिए तैयार हूँ।'

श्री रामकृष्ण के अन्दर मानवता की भावना अति प्रबल थी, इसलिए वे यह अनुभव करते थे कि उनकी पत्नी का भी उन पर अधिकार है, परन्तु दूसरी ओर शारदामणि भी उदार थीं कि वह अपने पति के आदर्श के लिए अपने अधिकारों को सहर्ष त्यागने व उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए उद्यत थीं। श्री रामकृष्ण अपनी पत्नी के सहयोग से ही अपनी पसन्द का जीवन बिता पाए थे। उनकी सरलता एवं आत्मत्याग से मुग्ध होकर श्री रामकृष्ण

उनके साथ ज्येष्ठ भ्राता की तरह व्यवहार करते थे। जितने महीने वे एक साथ रहे, श्री रामकृष्ण उन्हें एक कर्मपरायणा पत्नी व निपुण प्रबन्धक बनाने के लिए धैर्यपूर्वक शिक्षा देते रहे। उनके अन्दर साधारण व्यवहार बुद्धि इतनी अधिक मात्रा में थी कि उसकी रहस्यवादी प्रकृति के साथ उनकी पत्नी का कैसे मेल बैठता था, यह देखकर आश्चर्य होता था।

सन् 1867 के अन्त में दक्षिणेश्वर वापस आ गए और अगले वर्ष में उन्होंने मथुर बाबू के साथ कई तीर्थ यात्रायें कीं। सन् 1868 के आरम्भ के महीनों में उन्होंने शिव नगरी काशीधाम, गंगा और यमुना के संगम पर अवस्थित प्रयागतीर्थ एवं पौराणिक कथाओं तथा परम संगीत आदि के स्थल और कृष्ण की प्रेमलीला के निकेतन वृन्दावन-धाम की यात्रा की। उनके भावावेश व उन्माद की सहज ही कल्पना की जा सकती है। जब उन्होंने काशीधाम के निकट गंगा को पार किया तो उन्हें वह परमात्मा की नगरी पत्थरों से निर्मित नहीं प्रतीत हुई वरन् एक स्वर्गीय आध्यात्मिकता के घनीभूत स्तूप की तरह दिखाई देने लगी। काशी के श्मशान घाट में उन्होंने प्रबल देह एवं पिंगल जटाजूटधारी शिवमूर्ति के और चिता श्रेणी के ऊपर आनत एवं मृत पुरुषों को मोक्षदान करती हुई काली मां ने दर्शन दिए। गौधूलि के समय यमुना के तट पर ग्वाल बालकों को अपनी गउओं के साथ वापस जाते देखकर वह भाव-विमुग्ध हो गए और व्याकुल होकर चीत्कार करने लगे, 'कृष्ण ! कृष्ण कहां है?'

श्री रामकृष्ण जब मथुर बाबू के साथ देवघर पहुंचे तो वहां उन्होंने नग्न, जीर्ण-शीर्ण व क्षुधापीड़ित संथालों को देखा जो कि भयानक दुर्भिक्ष के नग्न शिकार बने हुए थे। उन्होंने मथुर बाबू से उन लोगों के भोजन का प्रबन्ध करने के लिए कहा। मथुर बाबू ने आपत्ति प्रकट करते हुए उत्तर दिया कि वे इतने धनी नहीं हैं सारी दुनिया को भोजने दे सकें। यह सुनकर श्री रामकृष्ण उन भूखे लोगों के बीच बैठकर रोने लगे कि वहां से न हिलें और उनके कष्टों में हिस्सा लेंगे। अन्त में मथुर बाबू को हार माननी पड़ी और श्री रामकृष्ण की इच्छा पूरी करनी पड़ी।

सन् 1870 में मथुर बाबू ने लगान वसूली के समय श्री रामकृष्ण को अपने साथ एक जमींदारी में ले जाकर फिर गलती की। दो वर्ष से लगा-

तार सूखा पड़ने के कारण फसल नहीं हुई थी और किसान बड़े कष्ट से अपने दिन व्यतीत कर रहे थे। श्री रामकृष्ण ने मथुर बाबू से किसानों का लगान माफ करने, उन्हें सहायता देने और उन्हें भोजन देने की सिफारिश की। मथुर बाबू ने प्रतिवाद किया किन्तु श्री रामकृष्ण टलने वाले न थे।

उन्होंने मथुर बाबू से कहा, 'तुम केवल मां की जागीर के प्रबंधक हो। वे मां के आसामी हैं। तुम्हें मां का पैसा खर्च करना चाहिए। जब उसके आसामी कष्ट भोग रहे हैं, तुम उनकी सहायता से कैसे इन्कार कर सकते हो ? तुम्हें सहायता करनी ही होगी।'

मथुर बाबू को उनकी बात माननी ही पड़ी।

श्री रामकृष्ण ने उसी समय अपनी तपस्या आरम्भ की थी, लगभग उसी समय उत्तर हिन्दुस्तान के अनेक स्थानों में धार्मिक आंदोलन शुरू हो रहा था। कलकत्ता और उसके आसपास हरिसभा एवं ब्राह्मसमाज की हलचल संयुक्त-प्रान्त एवं पंजाब की ओर स्वामी दयानन्द सरस्वती के वैदिक धर्म का प्रचार तथा बंगाल में वेदान्त कर्ताभजा सम्प्रदाय, राधा-स्वामी सम्प्रदाय आदि के धार्मिक आन्दोलन हो रहे थे।

तीर्थ यात्रा से लौटने के बाद दो-ढाई वर्ष तक कोई विशेष घटना नहीं हुई। सन् 1870 में श्री रामकृष्ण के भतीजे (रामकुमार के लड़के) अक्षय का दक्षिणेश्वर में निधन हो गया। श्री रामकृष्ण उससे बहुत प्रेम करते थे। उसके निधन से उन्हें बहुत दुख हुआ और जिस कमरे में उसके प्राण गए उस कमरे में उन्होंने फिर कभी पाँव नहीं रखा। अक्षय के बाद उसकी जगह श्री रामकृष्ण के मझले भाई रामेश्वर की नियुक्ति हुई।

श्री रामकृष्ण अक्षय के न रहने का दुख भूल जाए इस उद्देश्य से मथुर बाबू उन्हें अपनी जमींदारी के गांव में और अपने कुलगुरु के गांव में ले गए। वहां कुछ दिन व्यतीत कर उन्हें अपने साथ लेकर दक्षिणेश्वर वापस चले आए।

अपनी जमींदारी के गांव से लौटने के बाद मथुर बाबू बीमार पड़ गए। ईस्वी सन् 1971 के जुलाई मास की बात है। सात दिनों में उनकी अवस्था खराब हो गई। बोलने में भी उन्हें अत्यधिक कष्ट होता था। श्री रामकृष्ण पहले ही समझ चुके थे कि मथुर बाबू की यह लीला समाप्त होने

का समय आ गया है, इसलिए बीमारी में उन्हें देखने के लिए वह स्वयं नहीं गए। हृदय को वह प्रतिदिन उनके पास भेजा करते थे। अंतिम दिन तो उन्होंने हृदय को भी नहीं भेजा। मधुर का अन्त समय आया देखकर उन्हें गंगाजी के कालीघाट पर पहुंचा दिया गया। 16 जुलाई 1971 को दोपहर में श्री रामकृष्ण समाधिमग्न होकर बैठे थे। उनका स्थूल शरीर दक्षिणेश्वर में उनके कमरे में था, परन्तु वह अपने दिव्य शरीर से वहां से अपने परम भक्त के पीछे खड़े होकर उसे ज्योतिर्मय मार्ग से—अत्यधिक पुण्य से प्राप्त होने वाले—'स्वर्ग लोक में स्वयं चढ़ा रहे थे।'

श्री रामकृष्ण की समाधि उतरी। उस समय पांच बज गए थे। श्री रामकृष्ण हृदय को पुकार कर बोले—'मधुर दिव्य रथ में बैठ कर गया। श्री जगदम्बा की सखियों ने उसे बड़े आदर से रथ में बिठाया। मधुर देवी लोक चला गया।'

बाद में रात को नौ-दस बजे मन्दिर के नौकर-चाकर, पुजारी आदि वापस आए और उन्होंने संध्या चार-पांच बजे मधुर बाबू के निधन हो जाने की बात बताई।

सन् 1875 में श्री रामकृष्ण का श्री शम्भू चन्द्र मल्लिक से परिचय हुआ था और उनके मुख से बाइबिल के भी ईसा मसीह के पवित्र जीवन और सम्प्रदाय की थोड़ी-बहुत जानकारी उन्हें प्राप्त हो गई थी। ईसाई मत का अवलम्बन करके उस मार्ग अत्युच्च ध्येय प्राप्त करने की उत्कण्ठा उन्हें होने लगी।

बात ऐसी हुई, काली मन्दिर के अहाते के दक्षिण ओर यदुनाथ मल्लिक का बगीचा और बंगला था। श्री रामकृष्ण कभी-कभी घूमते वहां पहुंच जाते थे। श्री यदुनाथ और उनकी माता दोनों ही श्री रामकृष्ण के प्रति बहुत भक्ति रखते थे। श्री यदुनाथ की बैठक में दीवालों पर अनेक सुन्दर तैलचित्र लगे थे। उन चित्रों में अपनी माता की गोद में बैठे हुए श्री ईसामसीह का भी एक सुन्दर चित्र था। उस चित्र से वह बहुत प्रभावित हुए। श्री मल्लिक ने उन्हें बाइबिल पढ़कर सुनाई। यह पहला ही अवसर

था जबकि श्री रामकृष्ण को ईसा का परिचय प्राप्त हुआ था। थोड़ी ही देर बाद शब्दों ने रक्तमांसयुक्त शरीर का रूप धारण कर लिया। ईसा का जीवन गुप्त रूप से उनमें व्याप्त हो गया।

बुद्धदेव के विषय में अन्य हिन्दुओं के समान उनका यही विश्वास था कि बुद्धदेव प्रत्यक्ष ईश्वर के अवतार थे। जैन धर्म और सिक्ख धर्म पर भी श्री रामकृष्ण की भक्ति थी। इस प्रकार संसार के सभी मुख्य धर्मों से श्री रामकृष्ण ने परिचय प्राप्त कर लिया था और वे उनमें से बहुतों का अनुष्ठान करके उन धर्मों में बताये हुए ध्येय तक भी पहुंच गये थे।

सन् 1875 में एक बार श्री रामकृष्ण को यह देखने की इच्छा हुई कि श्री चैतन्यदेव का सर्वजन मोहक नगर-संकीर्तन कैसा रहा होगा और उनकी यह इच्छा श्री जगदम्बा ने पूर्ण भी कर दी। एक दिन श्री रामकृष्ण अपने कमरे के बाहर खड़े होकर पंचवटी की ओर देख रहे थे। इतने में उन्हें दीखा कि उधर से कमरे की ओर से दक्षिणेश्वर बाग के मुख्य फाटक की तरफ एक बड़ा भारी जन समुदाय भजन करते हुए जा रहा है। इन्हें यह भी दिखाई दिया कि उस जन समुदाय के मध्य भाग में नित्यानन्द और अद्वैताचार्य को साथ लेकर श्री गौरांगदेव स्वयं भावावेश में नृत्य-भजन कर रहे हैं, जिससे आस-पास के लोग भी देह की सुधि भूलकर उनके साथ नाच रहे हैं और जोर-जोर से हरि नाम की गर्जना कर रहे हैं। उस मेले में इतने लोग सम्मिलित थे कि मेले के आदि और अन्त का पता ही नहीं लगता था।

इस अद्‌भुत दर्शन के कुछ समय बाद श्री रामकृष्ण अपने गांव कामारपुकुर और हृदय के शिउड़ गांव में कुछ दिन रहने के लिए गए। शिउड़ गांव के पास श्यामबाजार गांव में बहुत से वैष्णव रहते थे। यह सुनकर कि वहां नित्य भजन आदि होता है, श्री रामकृष्ण की वहां जाने की इच्छा हुई। श्यामबाजार के समीपके बेलटे ग्राम के निवासी श्री नटवर गोस्वामी ने श्री रामकृष्ण को इससे पहले भी देखा था। श्री रामकृष्ण का शिउड़ आगमन सुनकर उन्होंने उनके पास घर आने का निमन्त्रण भेजा। हृदय को साथ लेकर श्री रामकृष्ण वहां गए और सात दिन वहां रहकर श्यामबाजार की वैष्णव मण्डली का भजन सुना। उनके प्रति श्याम बाजार के

ईशानचन्द्र मल्लिक के मन में बड़ी भक्ति उत्पन्न हो गई और उन्होंने श्री रामकृष्ण को अपने यहां भजन के लिए बुलाया। भजन के समय का उनका भावावेश और मनोहर नृत्य देखकर भजन में आए हुए सभी लोग तल्लीन हो गए।

सन् 1874 के प्रारम्भ में श्री रामकृष्ण ने ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता श्री केशवचन्द्र सेन से भेंट करने का विचार किया। उस समय केशवचन्द्र कलकत्ते के उत्तर में बेलधरिया नामक स्थान में श्री जय गोपाल सेन के यहां ठहरे हुए थे। एक दिन श्री रामकृष्ण हृदय को साथ लेकर केशव-चन्द्र से भेंट करने गए। वे वहां दोपहर के थोड़ी ही देर बाद पहुंचे। श्री रामकृष्ण उस दिन सिर्फ रेशमी किनारी की एक धोती पहनकर उसके एक छोर को बायें कन्धे पर डाले हुए थे।

वहां पहुंचकर हृदय ने केशवचन्द्र को कुछ लोगों के साथ एक तालाब के पास बैठे देखा। आगे जाकर हृदय ने नमस्कार करके कहा—'मेरे मामा को हरिकथा सुनना और हरि गुण सुनना बहुत अच्छा लगता है और उसे सुनकर उन्हें समाधि भी लग जाती है। आपका नाम सुनकर आपके मुख से ईश्वर वार्ता सुनने के लिए वह यहां आये हैं। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं उन्हें यहां ले आऊं। केशवचन्द्र ने जब अनुमति दे दी तो हृदय श्री रामकृष्ण को वहां ले आया। श्री रामकृष्ण को देखने के लिए केशवचन्द्र और उनके साथी लोग बहुत उत्सुक थे। उन्हें देखकर उन लोगों का जरा भी आभास नहीं हुआ कि यह कोई अलौकिक पुरुष होंगे।

केशवचन्द्र के पास जाकर श्री रामकृष्ण बोले—'बाबू मैंने सुना है कि आपको नित्य ईश्वर का दर्शन होता है। वह दर्शन किस प्रकार का रहता है, यही जानने की इच्छा से मैं आपके पास आया हूं।'

कुछ देर तक दोनों व्यक्तियों में बातें होती रहीं। कुछ ही देर बाद 'के जाने मन काली के मन षड्दर्शने ना पाय दर्शन' को गाते हुए श्री राम-कृष्ण की समाधि लग गई। उनकी समाधि को देखकर उस मण्डली को यह बिल्कुल नहीं मालूम पड़ा कि यह कोई आध्यात्मिक उच्च अवस्था है। उल्टा वे इसे कोई रोग या मस्तिष्क का विकार समझ बैठे। उनकी समाधि उतारने के लिए हृदय उनके कान में प्रणव का उच्चारण करने लगा और

उसे सुनते-सुनते श्री रामकृष्ण के मुखमण्डल पर अपूर्व तेज दिखाई देने लगा। अर्द्धबाह्य दशा प्राप्त होने पर श्री रामकृष्ण ने सरल-सरल दृष्टान्त देकर इतनी सहज भाषा में गूढ़ आध्यात्मिक विषय पर समझाना शुरू किया कि वे लोग चित्रलिखित से सुनते रह गए। उन लोगों की इस प्रकार की तन्मय अवस्था देखकर श्री रामकृष्ण हंसते हुए बोले—'गाय के झुण्ड में किसी अन्य जानवर के आ जाने पर वे जैसे सींग से खदेड़ने को दौड़ती हैं, किन्तु एक गाय के आ जाने से शरीर को चाटने लगती हैं, आज की अवस्था वैसी ही दिखाई देती है।' उसके बाद वह केशवचन्द्र से बोले, 'तेरी पूंछ झड़ गई।' लेकिन जब इसका अर्थ कोई न समझ सका तो श्री रामकृष्ण ने स्पष्ट किया, 'यह देखो, जब तक पूंछ झड़ नहीं जाती तब तक मेंढक पानी से बाहर नहीं निकलता, पर जब उसकी पूछ झड़ जाती है तब वह पानी में भी रह सकता है और पानी के बाहर भी रह सकता है। उसी प्रकार मनुष्य की अविद्यारूपी पूंछ जब तक नहीं झड़ती, तब तक को वह संसार रूपी पानी में ही रहता है और जब उसकी पूंछ झड़ जाती है, तब वह सांसारिक एवं पारमार्थिक दोनों विषयों में इच्छानुसार विचरण कर सकता है। केशव, तुम्हारा मन अब उसी प्रकार का हो गया है, और इसीलिए यह संसार में भी और सच्चिदानन्द के ध्यान में भी रह सकता है।' इस प्रकार कुछ अन्य बातों के बाद श्री रामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौट आये।

इसी दिन से केशव बाबू की श्री रामकृष्ण के प्रति इतनी दृढ़ भक्ति हो गई कि जब कभी उन्हें समय मिलता था, वे श्री रामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर आते थे और कभी-कभी उन्हें अपने बँगले पर भी ले जाते थे। क्रमशः इस दोनों में इतना प्रेम हो गया कि उन्हें आपस में मिले बिना चैन नहीं पड़ता था। ब्रह्मसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर केशवचन्द्र उन्हें लेकर उत्सव के स्थान में जाते और उनके दिव्यसंग में एक दिन व्यतीत करते थे।

कलकत्ता निवासियों को श्री रामकृष्ण के बारे में सर्वप्रथम श्री केशव-चन्द्र सेन द्वारा ही मालूम हुआ। केशवचन्द्र बड़े उदार हृदय तथा गुणग्राही पुरुष थे। उन्हें श्री रामकृष्ण के सत्संग में जो नई-नई बातें या नये-नये विचार मालूम होते, उन्हें बड़े प्रेम से अपने व्याख्यान में बताते और अपने ही

समान दूसरों को भी श्री रामकृष्ण की दिव्य संगति का लाभ हो इस उद्देश्य से वह श्री रामकृष्ण की तथा उनकी उच्च आध्यात्मिक अवस्था की बातें 'सुलभ समाचार', 'सण्डे मिरर', 'थिइस्टिक क्वार्टरली रिव्यू' आदि समाचारपत्रों में बराबर लिखकर प्रकाशित कराते। व्याख्यान में और उपासना के समय भी वे श्री रामकृष्ण के श्रीमुख से सुने हुए विचारों और उक्तियों का मनमाना उपयोग करते। उसी तरह फुर्सत मिलते ही वे स्वयं और कभी-कभी शिष्य मण्डली के साथ दक्षिणेश्वर जाते।

ब्रह्मसमाज के केशवचन्द्र आदि नेताओं की धर्म जिज्ञासा और ईश्वर प्रेम को देखकर श्री रामकृष्ण उन्हें साधन-भजनादि में रुचि दिलाकर ईश्वर दर्शन का मार्ग दिखाने का सदैव प्रयत्न करते थे।

श्री रामकृष्ण का स्वभाव ही ऐसा था कि किसी को अन्तःकरण से ईश्वर पर प्रेम करते देख वे उसे अपना अत्यन्त आत्मीय जान लेते थे और वे सदैव इस बात पर ध्यान रखते थे कि उसके ईश्वर दर्शन के मार्ग में उत्तरोत्तर किस तरह प्रगति हो रही है। फलतः वे उसको उस काम में हर तरह की सहायता देते थे। इस कारण ब्रह्मसमाज के नेताओं में से केशवचन्द्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी, प्रतापचन्द्र मजूमदार, चिरंजीव शर्मा, शिवनाथ शास्त्री आदि लोगों से उन्हें बड़ा प्रेम था। इन सब सच्चे ईश्वरानुरागी लोगों के साथ बैठकर भोजन करने में भी वे कभी हिचकते नहीं थे क्योंकि वे कहते थे कि ऐसे लोगों की एक भिन्न जाति होती है। इन सब लोगों के मन पर पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा का प्रभाव रहने के कारण उनके उपासना आदि प्रसंगों में भी अन्तःकरण की उमंग की अपेक्षा बाहरी दिखावट या आडम्बर थोड़ा-बहुत अवश्य घुस गया था। उसे दूर करने के लिए तथा वे लोग ईश्वर-प्राप्ति को ही जीवन का ध्येय जानने इस हेतु से, वे उन लोगों को सदा साधना आदि पर विशेष ध्यान देने के लिए जोर देते थे।

केशवचन्द्र सेन की लड़की का कूचबिहार के राजा के साथ विवाह होने के बाद ब्रह्मसमाज में इस विषय को लेकर बड़ा विवाद मचा और अन्त में उस समाज के 'भारतवर्षीय' और 'साधारण ब्रह्मसमाज' नामक दो भाग हो गए, परन्तु फिर भी श्री रामकृष्ण का सम्बन्ध ब्रह्मसमाज से कायम ही रहा

और दोनों ही समाजों पर उनका प्रेम वैसा ही बना रहा तथा दोनों ही समाज के साधकों को उनसे पूर्ववत ही आध्यात्मिक मार्ग में सहायता मिलती रही।

श्री केशवचन्द्र सेन से भेंट होने के लगभग चार वर्ष बाद सन् 1875 में श्री रामचन्द्र दत्त और मनमोहन मित्र दोनों समाचारपत्रों द्वारा श्री रामकृष्ण का वृत्तान्त पढ़कर उनके दर्शन के लिए आए और उन लोगों में दर्शन के प्रथम दिन से ही श्री रामकृष्ण के प्रति दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गई। उन लोगों के स्वभाव में क्रमशः इतना परिवर्तन हो गया कि उनको पहचानने वाले भी आश्चर्य करने लगे। श्री रामकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति इतनी बढ़ गई कि वे दोनों ही उन्हें अपने इष्टदेव के समान भजने लगे।

सन् 1880 से श्री रामकृष्ण के लीला सहचर त्यागी भक्तों का उनके पास आना आरम्भ हुआ। उनमें से प्रथम तो ब्रह्मानन्द जी आए उनका पूर्वाश्रम का नाम राखालचन्द्र था और मनमोहन मित्र की बहन के साथ इनका विवाह हुआ था। विवाह के थोड़े दिन बाद उन्होंने श्री रामकृष्ण का नाम सुना और शीघ्र ही उनका दर्शन किया।

श्री रामकृष्ण के दर्शन के लिए राखालचन्द्र के आने के तीन-चार महीने बाद ही नरेन्द्रनाथ ने श्री रामकृष्ण का प्रथम दर्शन किया।

नरेन्द्रनाथ एक कुलीन क्षत्रीय परिवार के सदस्य थे। उनके समस्त जीवन में युद्ध-परायण क्षत्रिय जाति की छाप पाई जाती है। 12 जनवरी सन् 1863 को कलकत्ता में उनका जन्म हुआ। उनकी माता एक उच्च शिक्षिता तथा राजकीय आनबान की महिला थीं, जिनकी वीर आतमा महान हिन्दू महाकाव्यों द्वारा परिपुष्ट हुई थी। नरेन्द्रनाथ के पिता विलास-वैभव के बीच एक अस्थिर जीवन व्यतीत करते थे। उनकी प्रकृति किसी जागीर-दार के समान स्वतंत्र थी। उनके हृदय में जात-पांत के प्रति उदासीनता का भाव था। इसका कारण यह था कि उनकी मनोवृत्ति उदार थी और अपनी उच्चता के प्रति उनके हृदय में एक हास्यमय चेतना थी। देह में सिंह का सौन्दर्य व मृग शावक की चंचलता थी। उसकी देह का गठन मल्लयोद्धा

के सदृश हृष्ट-पुष्ट था और वह असीम साहस से भरा हुआ था। वह सब शारीरिक व्यायामों में सिद्धहस्त था। वह मुष्टियुद्ध करने, तैरने व नाव चलाने में कुशल था और घुड़सवारी का भी उसे शौक था।

बचपन से नरेन्द्र को ध्यान करना वड़ा अच्छा लगता था और उसमें वह तत्काल तन्मय हो जाता था। सोते समय रोज उसे एक तेजोमण्डल दिखाई देता था और यह भास होता था कि उस गोले को कोई उसकी ओर फेंक रहा है। जब वह गोला उसकी ओर आते-आते बिल्कुल पास आ जाता, तब उसे ऐसा लगता कि मैं उसमें डूब रहा हूं और उसकी बाह्य संज्ञा लुप्त हो जाती थी। बहुत दिनों तक वह समझता रहा कि ऐसे नींद सभी को आती है। बहुत दिनों बाद उसे पता लगा कि ऐसी बात नहीं है।

विद्यार्थी अवस्था में ही नरेन्द्र ब्रह्मसमाज का अनुयायी बन गया था और उत्तरोत्तर उसका ध्यान धर्म की ओर अधिकाधिक खिचता गया। उसने लगभग इसी समय भिन्न-भिन्न धर्मों के ग्रन्थों का अध्ययन करना शुरू किया, जिससे वह विभिन्न मतों पर वाद-विवाद से ऊब गया और सत्य क्या है, यह जानने की उसकी उत्कंठा बढ़ चली। जब नरेन्द्र ने एफ० ए० की परीक्षा दे ली तो घरवालों ने उसके विवाह की बात चलाई परन्तु नरेन्द्र ने विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया।

धीरे-धीरे नरेन्द्र के पिता विश्वनाथ बाबू रामचन्द्रदत्त के ध्यान में यह बात आ गई कि धार्मिक प्रेरणा के कारण ही नरेन्द्र विवाह के लिए राजी नहीं होता। रामचन्द्रदत्त उससे एक दिन बोले—'यदि तेरे मन में सचमुच धर्म-प्राप्ति की इच्छा है तो व्यर्थ ही ब्रह्मसमाज आदि स्थानों में भटकने से कोई लाभ नहीं होगा। दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण के पास चला जा।'

उस समय नरेन्द्र 'जनरल असेम्बलीज इन्स्टिट्यूशन' में एफ० ए० क्लास में था। उस संस्था के प्रिन्सिपल हेस्टी नामक एक विद्वान सज्जन थे। उनकी विद्वता, अत्यन्त शुद्ध आचरण, शिष्यों के प्रति प्रेम आदि गुणों के कारण नरेन्द्र के मन में उनके प्रति बड़ा आदर था। एक दिन उन्होंने क्लास में बताया कि सृष्टि सौन्दर्य देखने में मग्न हो जाने से कभी-कभी कवि वर्डसवर्थ को भाव-समाधि लग जाया करती थी। तब विद्यार्थियों ने उनसे इस विषय के सम्बन्ध में और अधिक बताने का आग्रह किया। उन्होंने इस

विषय को यथासम्भव सरल बनाकर समझाया और कहा—'चित्त की पवित्रता और किसी विषय में एकाग्रता होने से यह अवस्था प्राप्त हो जाती है। ऐसे पुरुष बहुत बिरले दिखाई देते हैं। मेरे देखने में तो दक्षिणेश्वर के श्री रामकृष्ण परमहंस ही एक अकेले ऐसे पुरुष हैं। वहां जाकर उनकी यह अवस्था देखने से तुम्हें इस विषय की बहुत-सी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।'

सन् 1880 के नवम्बर मास में अपने अत्यन्त मित्र सुरेन्द्रनाथ मित्र के घर पर छोटे-मोटे उत्सव में नरेन्द्र ने एक सुन्दर गाना गाया। इसी स्थान पर श्री रामकृष्ण ने नरेन्द्र को प्रथम बार देखा और उनकी पारखी दृष्टि ने नरेन्द्र की आत्मा के अन्दर छिपे अमर तत्त्व को परख लिया। उन्होंने नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर आने को निमन्त्रित किया।

एक दिन युवक नरेन्द्र अपने उद्दण्ड व छिछोरे मित्रों के एक दल के साथ वहां पहुंच गया। वह अन्दर आकर उपस्थित हुआ। उसके चारों ओर क्या हो रहा है, इसकी तरफ कोई दृष्टिपात न करते हुए, अपने ही विचारों में मग्न वह आसन पर बैठ गया। श्री रामकृष्ण ने ध्यान से उसकी ओर देखते हुए उसे गाने के लिए कहा। नरेन्द्र ने आज्ञा पालन किया। उसके गाने का स्वर इतना आकर्षक था कि श्री रामकृष्ण जो नरेन्द्र के सदृश ही संगीत के प्रेमी थे, भावाविष्ट हो गए। आगे की घटना का वर्णन नरेन्द्र के ही शब्दों में इस प्रकार है—

मेरा गाना समाप्त होने पर वे एकदम उठ खड़े हुए और मुझे हाथ से पकड़कर उत्तर की तरफ बरामदे में ले गए और हमारे पीछे का दरवाजा बन्द कर दिया। हमारे समीप कोई और न था। हमें कोई देख भी न सकता था। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने उन्हें आनन्दविभोर होकर रोते देखा। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर, जैसे मेरा पहले ही से उनसे दीर्घ-काल से काफी घनिष्ठ परिचय हो, ऐसा भाव दर्शाते हुए स्नेहपूर्वक कहा—'ओह! तू इतनी देर करके आया है! तू इतना निर्दय क्यों था जो मुझे इतने दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी? मेरे कान और मनुष्यों की निरर्थक बातें सुनते-सुनते थक गए हैं। ओह मेरी कितनी साध है कि मैं अपने मन की कथा किसी एक योग्य व्यक्ति के हृदय में डाल सकूं, जो कि मेरे आन्तरिक अनु-

भवों को ग्रहण कर सके ! ···कुछ देर सुबकियां लेने के बाद वे फिर मेरे सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गए और फिर कहने लगे 'प्रभु ! मैं जानता हूं कि तुम वही नारायण के अवतार प्राचीन ऋषिनर हो और मनुष्यों के दुखों को दूर करने के लिए फिर पृथ्वी पर आए हो। मैं विस्मित रह गया। मैंने सोचा यह मैं क्या देख रहा हूं, इसे होश में लाना चाहिए। मैं विश्वनाथदत्त की सन्तान हूं, यह मुझे कैसे इस प्रकार कहने का साहस करता है ?···परन्तु मैं जाहिरा तौर पर चुप रहा और उन्हें अपनी बात जारी रखने दी। वे फिर मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर बोले, प्रतिज्ञा कर कि तू फिर जल्दी ही मुझे देखने के लिए अकेला आएगा।'

इस अद्भुत अतिथेय के हाथ से शीघ्र मुक्ति पाने के विचार से नरेन्द्र ने आने का वायदा कर लिया परन्तु अपने दिल में उसने फिर कभी उधर न आने का निश्चय किया। इसके बाद वह बैठक में लौटे जहां और सब बैठे थे। नरेन्द्र एक तरफ बैठ गया और ध्यानपूर्वक श्री रामकृष्ण की तरफ देखने लगा। उसे उनके शब्दों व कार्यों में कुछ भी विचित्र न मालूम हुआ; उसने उनके शब्दों में एक अन्तरतम तर्क को देखा, जिसे उसने यह अनुभव किया कि यह पूर्ण त्याग और विस्मयकर सचाई के जीवन का फल है। उन्हें कहते सुना, 'परमात्मा की उपलब्धि की जा सकती है उसे उसी प्रकार देखा जा सकता है और उसके साथ उसी तरह बातें की जा सकती हैं जिस प्रकार मैं तुम्हें देख रहा हूं और तुमसे बातें कर रहा हूं। परन्तु कौन ऐसा करने का कष्ट उठाता है ? मनुष्य, स्त्री, बच्चे और अन्य सांसारिक पदार्थों के लिए आंसू बहाते हैं, परन्तु ईश्वर के प्रेम के लिए कौन रोता है ? किन्तु यदि कोई सचमुच उसके लिए रोता है तो वह अवश्य उसे दर्शन देगा।'

कुछ क्षण पूर्व नरेन्द्र ने जो दृश्य देखा था, उसके साथ वह अपने सम्मुख स्थित इस सरल-शान्त ऋषि के चित्र का मेल न मिला सका। वह मन ही मन कहने लगा, 'वह एक पागल है, परन्तु फिर भी साधारण पुरुष नहीं है। सम्भव है वह पागल हो, परन्तु फिर भी श्रद्धा के योग्य है।' नरेन्द्र इसी तरह की भ्रमित अवस्था में दक्षिणेश्वर से वापस आ गया।

परन्तु इस विचित्र दर्शन ने उसके ऊपर असर प्रारम्भ कर दिया। एक महीने बाद वह पैदल चलकर दक्षिणेश्वर आया। नरेन्द्र के ही शब्दों

में ।[1]

'मैंने उन्हें अकेला अपनी छोटी-सी शय्या पर बैठे देखा । मुझे देखकर वे प्रसन्न हुए और मुझे स्नेहपूर्वक अपने बिछौने पर एक तरफ अपने समीप बैठा लिया । परन्तु एक ही क्षण बाद मैंने उन्हें आवेग से कम्पित होते देखा । उनकी आंखें मेरी तरफ लगी हुई थीं और वह निरुद्ध निःश्वास के साथ अस्फुट स्वर में कुछ कहते हुए मेरे निकट आते जा रहे थे । मैंने सोचा, कि वे पहले ही की तरह कुछ पागलपन की बातें करेंगे । परन्तु इससे पूर्व कि मैं उन्हें रोक सकूं, उन्होंने अपना दायां पैर मेरे शरीर पर रख दिया, वह स्पर्श कितना भयानक था ! मैं आंखें खोले-खोले ही देख रहा था कि कमरे की दीवारें व उसके अन्दर की अन्य सब वस्तुएं चक्कर लगा रही हैं और धीरे-धीरे शून्य में विलुप्त होती जा रही हैं ।···समस्त संसार और मेरा अपना व्यक्तित्व भी उसी समय एक नाम रहित शून्य में लीन हो गया । वह शून्यता मानो जिस किसी वस्तु का भी अस्तित्व था उसे अपना ग्रास बना रही थी । मैं भयभीत हो गया और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मृत्यु मेरे सामने खड़ी है । मैं भय से चिल्ला उठा, 'आप क्या कर रहे हैं ? घर पर मेरे मां-बाप हैं···' तब वे हंसने लगे और मेरी छाती पर अपना हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, 'अच्छा ! ठीक है । आज यहीं तक रहने दो । समय आने पर वह आ जाएगा ।' उनके यह शब्द कहने के साथ ही वह सब विस्मयकर दृश्य लुप्त हो गया । मैं अपने आपे में आ गया और बाहर और भीतर सब चीजें पूर्ववत हो गईं ।

सम्भवतः इसके एक सप्ताह बाद जब नरेन्द्र तीसरी बार श्री रामकृष्ण से मिलने के लिए आया तो उसने आत्मरक्षा की दृष्टि से अपनी समस्त विचार शक्ति को जाग्रत कर रक्खा था । उस दिन श्री रामकृष्ण एक पार्श्व-वर्ती उद्यान में ले गए । कुछ देर इधर-उधर टहलने के बाद वे एकान्त गोष्ठी भवन में बैठ गए । शीघ्र ही श्री रामकृष्ण भावाविष्ट हो गए । नरेन्द्र उनकी

---

1. जो अंश 'नरेन्द्र के शब्दों में' के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए हैं, वे स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक 'मेरे गुरुदेव' [My Master] से साभार उद्धृत किए गए हैं । —लेखक

तरफ गौर से देख रहा था कि अकस्मात ही श्री रामकृष्ण ने उन्हें छू दिया। तत्काल ही नरेन्द्र की समस्त बाह्य चेतना लुप्त हो गई। कुछ देर बाद जब वह होश में आया तो उसने देखा कि श्री रामकृष्ण उसकी तरफ देख रहे थे और उसकी छाती पर धीरे-धीरे प्रहार कर रहे थे।

बाद में श्री रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को नरेन्द्र की उस स्थिति के बारे में बताया था।

'जब वह उस अवस्था में था तो मैंने उससे अनेक प्रश्न पूछे। मैंने उससे पूछा कि वह पहले कौन था, अब उसकी क्या अवस्था है, इस पृथ्वी पर उसका क्या लक्ष्य है और वह कब तक जीवित रहेगा? उसने गम्भीरता में निमग्न होकर मेरे प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया, मैंने उसके बारे में जो कुछ देखा व अनुमान किया था, इन उत्तरों से उसकी पुष्टि हो जाती थी। यह गोपनीय वस्तु है। किन्तु मुझे मालूम हो गया कि वह एक ऋषि है, जिसे पूर्ण सिद्धि प्राप्त है और उसकी ध्यान की शक्ति असाधारण है। जिस दिन वह अपनी सच्ची प्रकृति को जान जाएगा, वह अपनी इच्छा से ही शरीर का त्याग कर देगा···।'[1]

परन्तु उस समय श्री रामकृष्ण ने नरेन्द्र से इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। लेकिन वह इस विशेष ज्ञान के आधार पर उससे व्यवहार करने लगे और नरेन्द्र को उनके शिष्यों में से एक विशेष स्थान प्राप्त हो गया।

परन्तु नरेन्द्र ने अभी तक शिक्षा की उपाधि धारण न की थी। वह किसी का शिष्य होना नहीं चाहता था। वह श्री रामकृष्ण की अनधिगम्य शक्ति से चकित हो गया था। चुम्बक जिस प्रकार लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार उन्होंने इसे अपनी ओर खींच लिया था, परन्तु वह स्वयं एक सुदृढ़ धातु का बना हुआ था। उसकी युक्ति हार नहीं मानना चाहती थी। जबकि कुछ ही दिन पूर्व वृजेन्द्रनाथ शील के साथ उसके संपर्क के समय उसके हृदय ने उसके मस्तिष्क के विरुद्ध विद्रोह किया था, वहां अब उसका मस्तिष्क उसके हृदय को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा। वह अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने और जो वस्तु उसकी दृढ़ युक्ति द्वारा

---

1. श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग, पृष्ठ 439

नियन्त्रित थी, उसके अतिरिक्त गुरु की अन्य बात को भी न मानने के लिए दृढ़संकल्प था।

अब इस नवीन शिष्य और प्राचीन गुरु में जो सम्बन्ध स्थापित हुआ, उससे विचित्र अन्य सम्बन्धों की कल्पना नहीं की जा सकती। नरेन्द्र अश्रु-प्रवाह आदि स्त्री सुलभ दुर्बलता से युक्त भाव-प्रवण भक्ति से घृणा करता था। वह हरएक वस्तु को विचारपूर्वक देखता था। वह एक क्षण के लिए भी अपनी युक्ति को डिगता नहीं देख सकता था। अकेला वही एक ऐसा शिष्य था, जो श्री रामकृष्ण के प्रत्येक शब्द को तोलता था, सन्देह की दृष्टि से देखता था। परन्तु श्री रामकृष्ण भी उत्तेजित व क्रुद्ध होने के स्थान पर इस बात के कारण उसे उतना ही अधिक चाहते थे। नरेन्द्र से मिलने से पूर्व श्री रामकृष्ण को इस प्रकार प्रार्थना करते सुना गया था—

'मां मैंने जो कुछ उपलब्धि की है, उसमें सन्देह करने वाले किसी व्यक्ति को मेरे पास भेज दे।'

मां ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। नरेन्द्र जिस प्रकार हिन्दू देवी-देवताओं को अस्वीकार करता था, उसी प्रकार वह अद्वैतवाद का भी विरोधी था। वह अद्वैतवाद को अनीश्वरवाद कहकर पुकारता था। वह हिन्दू धर्मशास्त्रों के आदेशों का खुले तौर पर मजाक उड़ाता था। उसने श्री रामकृष्ण से कहा, 'यदि लाखों मनुष्य भी आपको परमात्मा कहें परन्तु यदि मुझे उसका प्रमाण नहीं मिलता तो मैं कभी आपको वैसा नहीं कहूंगा।'

श्री रामकृष्ण ने हास्यपूर्वक नरेन्द्र का समर्थन किया और अपने शिष्यों से कहा—'किसी भी वस्तु को केवल मेरे कहने के कारण स्वीकार न करो। स्वयं प्रत्येक वस्तु की परीक्षा करो।'

नरेन्द्र की तीव्र आलोचना और उसके आवेगमय तर्क उन्हें आनन्द से मग्न कर देते थे। नरेन्द्र की उज्ज्वल तर्क बुद्धि और सत्य के अनुसन्धान के लिए उसकी अथक निष्ठा के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी। वे उसे शैव शक्ति का प्रकाश मानते थे और कहते थे कि यह शक्ति ही अन्त में माया को पराभूत करेगी। वह कहते थे—

'देखो! देखो! कैसी अन्तर्भेदी दृष्टि है। यह एक प्रज्वलित अग्नि-शिखा है जो कि समस्त अपवित्रताओं को भस्म कर देगी। महामाया स्वयं

भी उसके पास दस कदम के अन्दर तक नहीं घुस सकती। उसने उसे महिमा दी है उसकी शक्ति ही उसे पीछे रोक रखती है।'

नरेन्द्र का ज्ञान देखकर श्री रामकृष्ण का आनन्द इतना तीव्र हो उठता था कि वे बीच-बीच में भावाविष्ट हो जाते थे।

तथापि कभी-कभी जब उसकी आलोचना दूसरों का कोई ख्याल न करते हुए कठोर भाव से प्रयुक्त होती थी तो उससे श्री रामकृष्ण को दुख अनुभव होता था। नरेन्द्र ने श्री रामकृष्ण के मुंह पर ही कहा—'आप कैसे जानते हैं कि आपकी उपलब्धियां केवल आपके अस्वस्थ मस्तिष्क की ही उपज या केवल दृष्टिभ्रम मात्र नहीं हैं?'

श्री रामकृष्ण खिन्न होकर सांत्वना प्राप्त करने के लिए वहां से उठकर मां के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगे। मां ने सांत्वना देते हुए कहा—'धैर्य रखो! जल्दी ही नरेन्द्र की आंखें खुल जाएंगी।'

कभी-कभी जब वे नरेन्द्र व अन्य शिष्यों के बीच कभी न समाप्त होने वाले वाद-विवाद से तंग आ जाते तो वे मां से प्रार्थना करते—

'मां! नरेन्द्र को अपनी थोड़ी-सी माया दे दे, जिससे उसकी बुद्धि विकार कुछ कम हो जाय और उसका हृदय भगवान को छू सके।' परन्तु नरेन्द्र की यंत्रणा-कातर आत्मा आर्तनाद कर उठी—'मुझे भगवान की चाहना नहीं है। मुझे शांति की इच्छा है—अर्थात परम सत्य, परम ज्ञान, परम असीमता की इच्छा है।' वह यह नहीं देखता था कि उसकी यह इच्छा ही युक्ति की सीमा से परे है और उसके हृदय की निश्चित अमौक्तिकता को प्रकट करती है। उसके मन को भगवान के सम्बन्ध में प्रमाण द्वारा संतुष्ट करना सम्भव न था। वह कहता था—'यदि भगवान वस्तुतः सत्य है तो उसका प्रत्यक्ष करना भी सम्भव है।'

परन्तु धीरे-धीरे उसे यह मालूम हो गया कि भावावेशों का शिकार वह व्यक्ति (श्री रामकृष्ण) जिसे कि वह पहले पूर्णतया केवल उसके हृदय की ताड़ना के वशीभूत समझता था, बुद्धि के क्षेत्र में भी उससे कहीं अधिक बढ़कर अधिक प्राप्त किए हुए है। बाद में उसने श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध में कहा था—

'बाहर से देखने में वे पूर्ण भक्त हैं, परन्तु अन्दर से पूर्ण ज्ञानी हैं।...मैं

सर्वथा उसके विपरीत हूं।' किन्तु इस बात को स्वीकार करने और स्वेच्छा-पूर्वक श्री रामकृष्ण के हाथों में अपनी साभिमान स्वतंत्रता सौंपने से पूर्व वह बार-बार श्री रामकृष्ण के निकट जाता था और फिर वहां से भाग जाता था और उन दोनों के बीच आवेगमय आकर्षण एवं गुप्त संघर्ष का एक पार-स्परिक खेल जारी था। नरेन्द्र के निष्ठुर स्पष्ट भाषण, जिन वस्तुओं में उसका विश्वास न था, उनके प्रति उसकी सहानुभूति के अभाव, सब प्रकार के ज्ञान के मिथ्या आडम्बरों के प्रति उसकी दुर्दम संग्राम की घोषणा और दूसरों की सम्मतियों के प्रति उसकी अभिमानपूर्ण उदासीनता ने उसे अन्य लोगों की शत्रुता व निन्दा का पात्र बना दिया था। पर वह अपने अभिमान के नशे में उनकी कोई परवाह नहीं करता था। परन्तु श्री रामकृष्ण अपने सम्मुख कभी नरेन्द्र की निन्दा न होने देते थे। इसका कारण यह था कि उन्हें नरेन्द्र के बारे में पूर्ण निश्चय था। वह कहते थे कि यह युवक विशुद्धतम स्वर्ण का बना हुआ है और संसार की कोई मिलावट उसे दूषित नहीं कर सकती। श्री रामकृष्ण को एकमात्र यही भय था कि ऐसी प्रशंसनीय बुद्धि कहीं पीछे अपने मार्ग से भ्रष्ट न हो जाय और वह अपने अन्दर संघर्ष करने वाली अनेक शक्तियों को ऐक्य साधन के शुभ कार्य में न लगाकर किसी नये सम्प्रदाय व नये दल के निर्माण में उनका सदुपयोग न करने लगे। एक बार वे इसी प्रकार साधारण ब्राह्म समाज की सभा में प्रार्थना के समय नरेन्द्र को ढूंढ़ते हुए घुस गए और उन्हें उस हालत में वहां देखकर लोग उनके विरुद्ध नाना प्रकार की कटु व निन्दापूर्ण आलोचना करने लगे। नरेन्द्र को इससे कष्ट भी हुआ परन्तु साथ ही क्रोध भी और उसने इस पीछा किए जाने से मुक्ति पाने के लिए श्री रामकृष्ण को कठोर शब्द भी कहे। उसने श्री रामकृष्ण से कहा कि किसी भी मनुष्य को दूसरे मनुष्य के लिए इस प्रकार पागल नहीं होना चाहिए और यदि वे उससे इतना अधिक प्यार करते हैं तो वे अपनी आध्यात्मिक महानता को गंवा कर उसके ही (नरेन्द्र के) स्तर पर आ जायेंगे। सरल व पवित्र श्री रामकृष्ण ने भयपूर्वक नरेन्द्र के कथन को सुना और लौटकर मां से सलाह पूछने लगे। परन्तु सांत्वना पाकर फिर लौट आए। और नरेन्द्र से कहा—'ओ अभागे! मैं तेरी बात नहीं सुन सकता। मां ने मुझे कहा है कि मैं तुझे इसलिए प्यार करता हूं,

क्योंकि मैं तेरे अन्दर भगवान देखता हूं। जिस दिन मैं तेरे अन्दर उसे न देख सकूंगा, उसी दिन मेरे लिए तुझे देखना असह्य हो जाएगा।'

शीघ्र ही उन दोनों की हालत विपरीत हो गई। अब वह समय आ गया जबकि नरेन्द्र की उपस्थिति को श्री रामकृष्ण एकदम निर्लिप्त भाव से देखने लगे। वे इस प्रकार अन्य व्यक्तियों से बातों में व्यस्त रहने लगे कि मानो उन्होंने नरेन्द्र को देखा ही नहीं है। कई सप्ताह तक यही क्रम जारी रहा तथापि नरेन्द्र धैर्यपूर्वक चुपचाप आकर फिर-फिर उनके पास बैठ जाता। श्री रामकृष्ण ने उससे पूछा कि जब वे उससे सत्य बात नहीं करते तो वह क्यों आता है। नरेन्द्र ने उत्तर दिया, 'मैं आपके शब्द सुनने यहां नहीं आता। मैं आपसे प्यार करता हूं—और इसलिए आपको देखने के लिए आता हूं।'

गुरु की आध्यात्मिक शक्ति ने धीरे-धीरे विद्रोही शिष्य को वश में कर लिया। नरेन्द्र न व्यर्थ ही श्री रामकृष्ण के विश्वासों—विशेषत: दो सर्वथा विपरीत विश्वासों—मूर्ति पूजा में निष्ठा और एक अद्वितीय में विश्वास—का उपहास किया। भगवान का जादू धीरे-धीरे अपना कार्य कर रहा था।

श्री रामकृष्ण ने उससे पूछा—'यदि तुम मेरी मां को नहीं मानते तो यहां क्यों आते हो?' नरेन्द्र ने उत्तर दिया—'क्या आने से ही मुझे उसे मानना होगा?'

गुरु ने कहा—'अच्छा! अब से कुछ ही दिन बाद न केवल तुम उसे मान ही लोगे अपितु उसका नाम मात्र सुनकर रोने लगोगे।'

यह वह समय था जब कि श्री रामकृष्ण नरेन्द्र के लिए परम ब्रह्म के साथ एकत्व सम्पादक अद्वैत वेदान्त का द्वार खोलना चाहते थे। नरेन्द्र ने उनके इस विचार को धर्म का अपमान व पागलपन कहकर उड़ा दिया। वह इस विचार की हंसी उड़ाने का कोई भी अवसर हाथ से न जाने देता था और एक दिन वह और एक अन्य शिष्य इसकी युक्तिशून्यता पर व्यंग कसते हुए हो-हो करके हंस रहे थे। वे कह रहे थे—'यह लोटा भगवान है!··· यह मक्खियां भगवान हैं।' पार्श्ववर्ती कक्ष में श्री रामकृष्ण ने हंसते हुए लड़कों की ध्वनि सुनी। वे अर्धचेतना अवस्था में चुपचाप कमरे के अन्दर आए और नरेन्द्र को स्पर्श किया। फिर एक आध्यात्मिक तूफान उसके ऊपर

से गुजर गया। क्षण-भर में नरेन्द्र की आंखों में हरेक वस्तु परिवर्तित हो गई। उसने विस्मय के साथ देखा कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है! वह लौटकर अपने घर चला गया। परन्तु वह जिस वस्तु को देखता व छूता व खाता था, वह सब कुछ भगवान ही था।…सार्व-भौम शक्ति से उन्मत्त होकर उसने सब काम करना छोड़ दिया। उसके माता-पिता उसकी यह अवस्था देखकर चिन्तातुर हो गए और उसे बीमार समझने लगे। कुछ दिन तक वह इसी दशा में रहा। उसके बाद उसका स्वरूप लुप्त हो गया परन्तु उसकी स्मृति अद्वैतिक अवस्था के पूर्वास्वाद के रूप में नरेन्द्र के हृदय में बनी रही और उसके बाद फिर कभी उसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया।

उसके अनन्तर वह रहस्यमय तूफानों की एक श्रृंखला में से गुजरा। वह किसी पागल की तरह 'शिव !…शिव !…' रटने लगा। श्री रामकृष्ण करुणापूर्ण दृष्टि से उसे लक्ष्य करने लगे—

'हां मैं भी बारह वर्ष तक इसी अवस्था में रहा हूं।'

नरेन्द्र की प्रकृति सिंह के सदृश्य थी। वह एक ही छलांग में व्यंगपूर्ण अस्वीकार से उपलब्धि के क्षेत्र में पहुंच गया। परन्तु यदि अन्दर से बाहर की सुरंग न बिछाकर केवल बाहर ही से उसके दुर्ग पर आक्रमण किया जाता तो उसके स्वभाव में कभी ऐसा दीर्घ स्थाई रूपान्तर न आ सकता था। वेदना के तत्कालिक तीव्र कशाघात ने उसे आरामदेह सन्देह और बुद्धि-पादिता के विलास से, जिनका कि उसे अभिमान था, मुक्त कर दिया और उसे पाप व अस्तित्व की दुखदायक समस्या के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया।

सन् 1884 के प्रारम्भ में नरेन्द्र के पिता की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु से सारे परिवार के सम्मुख विनाश आ खड़ा हुआ। छः-सात व्यक्तियों के लिए अन्न जुटाने का प्रश्न था, इसके अतिरिक्त कर्जख्वाहों की भीड़ थी। उस दिन से नरेन्द्र को दरिद्रता का स्वाद मिला। नौकरी के लिए निरर्थक खोज और मित्रों की विमुखता का ज्ञान हुआ। इन दिनों नरेन्द्र प्रातःकाल ईश्वर से प्रार्थना किया करता था। एक दिन उसकी मां ने जिसकी भक्ति व श्रद्धा अपनी इसी भयानक विपत्ति के कारण बुरी तरह विचलित हो उठी

थी, नरेन्द्र को प्रार्थना करते सुना। वह एकदम बिगड़कर बोली, 'मूर्ख, चुप रहो ! तुमने बचपन से लेकर आज तक भगवान का नाम ले-लेकर अपना गला फाड़ लिया है, परन्तु भगवान ने तेरे लिए क्या किया है ?' यह सुनकर नरेन्द्र का दिल भी भगवान के प्रति क्रोध से भर गया।

'यदि भगवान इतने मंगलमय हैं, इतने करुणामय हैं तो आज एक-एक ग्रास अन्न के लिए लाखों आदमी भूखे क्यों मर रहे हैं।'

एक प्रचण्ड विद्रोह ने स्वर्ग के विरुद्ध सर उठाया। उसने भगवान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

किन्तु नरेन्द्र के लिए श्री रामकृष्ण का विश्वास नष्ट नहीं हुआ, पर वे एक मनोवैज्ञानिक मुहूर्त की प्रतीक्षा में थे। वे जानते थे कि नरेन्द्र की मुक्ति केवल उन्हीं के द्वारा सम्भव है। ग्रीष्म ऋतु समाप्त हो गई। नरेन्द्र आजीविका के लिए अपनी कष्टदायक खोज में लगा रहा। एक दिन संध्या के समय अनाहार के कारण अवसन्न देह के साथ रोते-रोते वह सड़क के किनारे एक घर के सामने बैठ गया। उसकी भूलुण्ठित देह में ज्वर-विकार प्रबल हो उठा। अचानक ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसकी आत्मा को ढकेलने वाले पर्दे फट गए हैं और एक प्रकाश का उदय हुआ है। उसके समस्त अतीत संशय अपने आप मिट गए। अब वह सचमुच यह कह सकता—'मैं देखता हूं, मैं जानता हूं, मैं विश्वास करता हूं, मेरा भ्रम दूर हो गया है।'

उसे देह और मन की शान्ति प्राप्त हो गई। उसने घर जाकर सारी रात ध्यान में व्यतीत कर दी। प्रातःकाल के समय उसका मन स्थिर हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि अपने पितामह के सदृश वह भी संसार का त्याग कर देगा। कब करेगा, उसकी तिथि भी उसने निश्चित कर ली।

उसी दिन श्री रामकृष्ण इन सब बातों को बिना जाने ही अचानक कलकत्ता आ गए और उन्होंने नरेन्द्र से उस रात के लिए अपने साथ दक्षिणेश्वर चलने का आग्रह किया। नरेन्द्र ने भाग निकलने की काफी चेष्टा की पर सफल न हो सका और उसे गुरु के साथ जाना पड़ा। उस रात नरेन्द्र के साथ एक ही बन्द कमरे के अन्दर श्री रामकृष्ण भजन गाने लगे। उनके सुन्दर मधुर स्वर को सुनकर नरेन्द्र के आंसू बहने लगे। श्री

रामकृष्ण ने उससे कहा—

'मैं जानता हूं कि तुम संसार में नहीं रह सकते परन्तु जब तक मैं इस संसार में हूं, मेरे लिए तुम भी इसमें रहो।'

नरेन्द्र घर लौट आया। उसे एक अनुवाद के दफ्तर व एक वकील के कार्यालय से कुछ काम मिल गया था, परन्तु उसे कोई स्थिर कार्य न मिला था और इसलिए उसके परिवार का भविष्य एक दिन से अधिक के लिए अनिश्चित था। उसने श्री रामकृष्ण से अपने व अपने परिवार के लिए प्रार्थना करने को कहा। श्री रामकृष्ण ने उत्तर दिया—'वत्स ! मैं यह प्रार्थनायें नहीं कर सकता। तुम अपने आप वैसा क्यों नहीं करते।'

नरेन्द्र मां के मन्दिर में गया। वह अपने आपको अत्यन्त प्रसन्न और उत्साहित अनुभव कर रहा था। उसके अन्दर प्रेम और विश्वास की धारा बह रही थी। परन्तु जब वह लौटकर आया और श्री रामकृष्ण ने उससे पूछा कि उसने अपने कष्टों से मुक्ति के लिए प्रार्थना की या नहीं तो उसने उत्तर दिया कि वह भूल गया था। श्री रामकृष्ण ने उसे फिर जाने के लिए कहा। वह दुबारा और तिबारा भी जाकर लौट आया। ज्योंही वह मन्दिर के अन्दर प्रवेश करता था, त्योंही प्रार्थना करने का लक्ष्य उसकी आंखों के आगे से लुप्त हो जाता था, तीसरी बार उसे निःसन्देह अपने आने का प्रयोजन स्मरण रहा, परन्तु वह शर्म के मारे कुछ कह न सका। 'ये कितने क्षुद्र स्वार्थ हैं। इनके लिए मैं मां से प्रार्थना करूं।' इसके स्थान पर उसने प्रार्थना की—

'मां ! मैं जानने और विश्वास करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता।' उस दिन से उसके लिए एक नये जीवन का सूत्रपात हो गया। वह जान गया और उसे विश्वास प्राप्त हो गया। इसके आगे नरेन्द्र के ही शब्दों में—

'मन्दिर से वापस लौटते समय सारा नशा उतर गया और मालूम पड़ने लगा कि ये सब श्री रामकृष्ण का ही खेल होना चाहिए। नहीं तो तीन-तीन बार मन्दिर जाकर ऐसा कैसे होता ! श्री रामकृष्ण के कमरे में जाते ही मैं उनके पास बैठ गया और बोला—'यह सब कुछ नहीं है महाराज ! अब आपको ही मेरे लिए मां से प्रार्थना करनी होगी।' इस पर वे बोले—

'क्या करूं रे ! मैं किसी के लिए भी ऐसी प्रार्थना आज तक कभी भी नहीं कर सका। ऐसी बात मेरे मुंह से बाहर ही नहीं निकलतीं, इसीलिए तो तुझसे कहा कि तू मां के पास जो चाहे सो मांग ले। मां तुझे वह वस्तु अवश्य ही देगी पर तुझे इतनी सीधी-सी बात भी करते नहीं बनी। तेरे भाग्य में संसार सुख नहीं है, उसे मैं भी क्या करूं ?' पर मैं इस पर थोड़े ही न चुप बैठने वाला था ? मैं पुन: बोला—'कुछ नहीं महाराज ! आज मैं आपको छोड़ता नहीं, आपको इतनी बात तो करनी ही होगी। मुझे निश्चय है कि आप यदि मन में ले लें तो सब कुछ हो जाएगा।' उन्होंने जब देखा कि यह किसी तरह नहीं मानता तब वे बोले—'अच्छा तो जाओ, तुम लोगों को रूखे-सूखे अन्न और मोटे वस्त्र की कमी नहीं रहेगी।' और तब से हमारी सभी कठिनाइयां किसी न किसी तरह दूर होती गईं।

नरेन्द्र के जीवन में उपरोक्त घटना बड़े महत्त्व की है। इतने दिनों तक उसे ईश्वर के साकार स्वरूप पर विश्वास नहीं था। लेकिन उसी नरेन्द्र को साकार स्वरूप पर विश्वास करते देखकर श्री रामकृष्ण के आनन्द की सीमा न रही।

गृहस्थी की गाड़ी को किसी तरह ठीक-ठीक चलती हुई देखकर नरेन्द्र निश्चिन्त हुआ और साधन, भजन, ग्रन्थ पाठ आदि में उसका बहुत-सा समय बीतने लगा। समय मिलते ही वह श्री रामकृष्ण का दर्शन कर आता था और साधन मार्ग की अपनी कठिनाइयां उन्हें बता दिया करता था। श्री रामकृष्ण भी अब क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए आदि विषयों के सम्बन्ध में उसे बड़े प्रेम से उपदेश दिया करते थे और साधन-भजन के निरीक्षण में नरेन्द्र की आध्यात्मिक उन्नति बड़े वेग से होने लगी और निर्गुण साक्षात्कार की व्याकुलता होने लगी और निर्गण साक्षात्कार की व्याकुलता होने के कारण वह और भी अधिकाधिक कठोर साधना करने लगा। यह देखकर श्री रामकृष्ण को बड़ा आनन्द हुआ और नरेन्द्र के ईश्वरानुराग तथा तीव्र वैराग्य की वे हरएक से दिल खोलकर चर्चा करने लगे।

नरेन्द्र की व्याकुलता बढ़ती गई। उसे मालूम होने लगा कि 'श्री राम-कृष्ण यदि मन में ठान लें तो क्या ईश्वर दर्शन, क्या समाधि—ये सभी

मेरे हाथ के मैल हैं। उनके पास धरना देकर बैठा तो जाय।' यह विचार मन में आते ही उसने श्री रामकृष्ण के पास तकाजा करना शुरू कर दिया। वह कहता था—'महाराज ! मुझे निर्विकल्प समाधि सुख का अनुभव आपको करा देना चाहिए।' वे कहते थे—'मैं क्या कर सकता हूं। मेरे हाथ में क्या है ? मां की जैसी इच्छा होगी, वैसा होगा।' इस पर नरेन्द्र कहता था—'महाराज ! आपकी इच्छा भी होगी तो मां की इच्छा हो जाएगी।' तब वे कहते—'अरे ! पर इस प्रकार जल्दी करने से कैसे होगा ? बीज को जमीन में बोते ही क्या तुरन्त उसका पेड़ उगकर उसमें फल लगने लगते हैं ? समय आए बिना कुछ नहीं हो सकता।' इस पर नरेन्द्र एक दिन ढिठाई से बोला—'पर महाराज ! वह समय कब आएगा ? आप तो दिनोंदिन अशक्त[1] हो रहे हैं, आप चले जायेंगे तब फिर मैं किसकी ओर देखूंगा ?' यह सुनकर श्री रामकृष्ण चकित होकर नरेन्द्र के मुख की ओर देखने लगे। कुछ न कहकर चुपचाप बैठे रहे।

होते-होते एक दिन नरेन्द्र नित्य के समान ध्यानस्थ बैठा था कि उसे एकाएक समाधि लग गई ! उसके पास उसके और भी गुरुबन्धु ध्यान कर रहे थे। उन लोगों का ध्यान समाप्त हुआ और वे देखते क्या हैं—नरेन्द्र बिल्कुल स्थिर बैठा हुआ है तथा उसकी दृष्टि नासाग्र पर जमी हुई है। श्वासोच्छ्-वास बन्द है और शरीर में प्राण के कोई भी चिह्न नहीं दीख रहे हैं। यह कैसी अवस्था है—सोचकर डर के मारे घबड़ाकर एक-दो लोग श्री राम-कृष्ण से यह बात बताने के लिए दौड़ते हुए दूसरी मंजिल पर गए। श्री रामकृष्ण अपने बिस्तर पर ही चुपचाप बैठे थे और उनकी मुखमुद्रा शान्त एवं गम्भीर मालूम पड़ती थी। उनकी बात सुनकर वे गम्भीरतापूर्वक बोले—'उसको कुछ समय तक वैसे ही रहने दो। हाल-हाल में वह मानो मेरा माथा खाली कर रहा था।' उनका इस प्रकार शान्तिपूर्ण उत्तर सुनकर वे लोग चकित हो गए, पर उनको निश्चय हो गया कि सब बातें श्री राम-कृष्ण को मालूम हैं, नरेन्द्र की जान को किसी प्रकार का खतरा नहीं। यह समझकर वे लोग वापस लौट आए और नरेन्द्र के पास बैठे रहे। बहुत समय

1. इस समय श्री रामकृष्ण गले के रोग से पीड़ित थे।

के बाद नरेन्द्र को देह भाव हुआ। उसका अन्तःकरण भर आया था। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी और उसके हृदय में दिव्य आनन्द और शान्ति का प्रचण्ड प्रवाह बहने लगा था। देह भान होते ही उसने प्रथम श्री रामकृष्ण को प्रणाम किया और तत्काल वह उठकर सीढ़ियों की ओर दौड़ पड़ा। ऊपर श्री रामकृष्ण अभी तक चिन्तित बैठे थे। ऊपर जाकर उनके सामने साष्टांग प्रणाम करके नरेन्द्र हाथ जोड़कर चुपचाप खड़ा रहा। कृतज्ञता, आनन्द, शान्ति से उसका हृदय भर गया था और उसके मुख से शब्द भी नहीं निकलता था। अपने प्रधान शिष्य को देखकर श्री रामकृष्ण का आनन्द उमड़ पड़ा। उन्होंने उसके हृदय की हलचल को पहचान लिया और बोले —'अब मां ने तुझे सब कुछ दिखा दिया है और तेरे सन्दूक की सिर्फ चाबी मेरे पास दे दी है। अब इस अनुभव को अच्छी तरह यत्नपूर्वक रख और कुछ दिनों तक लोगों से मिलना-जुलना मत तथा किसी से बहुत न बोलना। वैसे ही कुछ दिनों तक अपने हाथ से रसोई बनाकर खाया कर।— समझा? अच्छा, अब जा। थोड़ा आराम कर ले और थोड़ी देर के बाद मां के मन्दिर में जाकर उसको प्रणाम कर आना।'

इस प्रकार श्री रामकृष्ण की कृपा से नरेन्द्र ने मानव जीवन का ध्येय प्राप्त कर लिया। श्री रामकृष्ण का यही महान शिष्य नरेन्द्र भारत के मनीषियों के इतिहास में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्री रामकृष्ण के बहुत से भक्त लोग उनके पास सन् 1881 के बाद आए और श्री रामकृष्ण के धर्म के पुनरुज्जीवित करने का बहुत-सा कार्य इसी समय हुआ। सन् 1881 से अप्रैल 1885 तक अपने भक्तों के साथ अद्‌भुत लीला करके उन्होंने सारे कलकत्ता शहर को और उनके द्वारा सारे बंगाल प्रान्त को हिला दिया तथा लोगों की धर्म सम्बन्धी कल्पना में भारी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। सन् 1885 में उनके गले में एक विचित्र रोग हो गया और उस समय से लगभग डेढ़ वर्ष तक वे प्रायः रुग्णशय्या में ही रहे। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था तब भी उनका उत्साह ज्यों का त्यों बना रहा और उन्होंने अपनी बीमारी की अवस्था में ही अपने भक्तगणों को एकत्रित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

सन् 1885 के ग्रीष्मकाल में श्री रामकृष्ण को कहीं गर्मी के कारण बहुत कष्ट होते देखकर उनके भक्तों ने उनके लिए बर्फ का प्रबन्ध किया। वे हर रोज बर्फ डाला हुआ ठण्डा पानी पीते तथा बच्चों के समान आनन्द प्रकट करते, परन्तु एक-दो महीने बीतने पर उनके गले में पीड़ा होने लगी और वह क्रमश: बढ़ने लगी।

लगभग एक मास बीत गया। फिर भी उस पीड़ा के कम पड़ने के कोई चिह्न नहीं दीखते थे, परन्तु इसके विपरीत एक नया विकार पैदा हो गया। अधिक समय तक बोलते रहने से तथा समाधि के बाद वह पीड़ा बहुत अधिक बढ़ने लगी। कुछ दिनों बाद गले पर कुछ सूजन आ गई, इसलिए उन भक्त लोगों ने उस पर लेप आदि लगाया। कुछ दिनों तक लेप लगाने के बाद भी सूजन कम न हुई, तब भक्त लोग बहू बाजार के डाक्टर राखालचन्द को बुला लाए। उन्होंने गले में भीतर से लगाने के लिए दवा दी और बाहर के लिए मालिश करने के लिए कुछ दवा देकर बहुत न बोलने तथा बारम्बार समाधि मग्न न होने के लिए ताकीद कर दी।

ज्येष्ठ मास आया। कलकत्ते से उत्तर की ओर 13-14 मील पर पानिहाटी नामक स्थान है। वहां हर वर्ष इस महीने में श्री रघुनाथ दास गोस्वामी की स्मृति में वैष्णव सम्प्रदाय वालों का उत्सव हुआ करता है। श्री रघुनाथ दास श्रीकृष्ण चैतन्य (गौरांग महाप्रभु) के शिष्यों में से ही एक थे और ईश्वर-प्राप्ति के लिए उन्होंने इस मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन संसार का त्याग करके संन्यास लिया था। इसी घटना के स्मरणार्थ यह उत्सव वहां मनाया जाता था। अनेक स्थान के वैष्णव भक्त उस दिन वहां जमा होते और सारा दिन कीर्तन, भजन, नाम स्मरण में बीतता था। बाद में श्री रामकृष्ण भी इस उत्सव में प्रति वर्ष शामिल होने लगे, परन्तु सन् 1880 से वे किसी न किसी कारणवश वहां जा नहीं सके। इस वर्ष जाने की इच्छा से उन्होंने अपनी भक्त मण्डली से कहा—'इस उत्सव में आनन्द का बाजार भरता है, ईश्वर के नामघोष से दसों दिशायें गूंज उठती हैं। तुम 'यंग बंगाल' वाले लोगों ने कभी ऐसा मजा नहीं लूटा होगा। तुम लोग साथ आओ तो सोचता हूं, हो आयें।' यह सुनकर रामचन्द्र दत्त आदि लोगों को बड़ा आनन्द हुआ, परन्तु कुछ लोग उनकी बीमारी के कारण

उनके जाने में राजी नहीं हुए। उन लोगों के सन्तोष के लिए उन्होंने कहा—'हम लोग ऐसा करेंगे कि यहां से बिल्कुल सवेरे ही थोड़ा-सा फलाहार करके चलेंगे और वहां जाकर एक-दो घण्टे ठहरेंगे और फिर लौट आयेंगे। बीमारी के बारे में थोड़ी सावधानी रखेंगे, किसी से बहुत नहीं बोलेंगे बस सब ठीक रहेगा।' उनके इस उत्तर से सबका समाधान हो गया और वे लोग वहां जाने की तैयारी करने लगे।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी का सूर्य उदय हुआ। आज ही पानिहाटी का उत्सव था। बड़े तड़के लगभग पच्चीस भक्त दो नौकायें लेकर दक्षिणेश्वर पहुंचे। कुछ लोग कलकत्ता से पैदल ही आये। श्री रामकृष्ण के लिए अलग नौका घाट पर तैयार थी। सवेरे से कुछ भक्त स्त्रियां आई थीं। उन्होंने तथा माताजी ने रसोई बनाकर सबको खिला दिया। लगभग दस बजे सब लोग चलने के लिए तैयार हो गए। श्री रामकृष्ण ने जब फलाहार कर लिया तो माताजी ने एक स्त्री द्वारा पुछवाया, 'क्या मैं भी साथ चलूं?' श्री रामकृष्ण बोले—'तुम सब तो चलते ही हो; उसकी जाने की इच्छा हो तो वह भी आ जाय।' श्री रामकृष्ण का सन्देश पाकर माताजी बोली—'वहां बड़ी भीड़ होगी। नौका से उतरकर भीड़ में से होते हुए देव दर्शन करना मुझ से नहीं हो सकेगा, इसलिए मैं नहीं आती। तुम लोग दो-चार उन्हीं की नौका में चली जाओ। यही ठीक होगा।'

लगभग दोपहर के समय नौका पानिहाटी के घाट पर आ लगी। कुछ हल्की वर्षा हो रही थी। इन लोगों ने उतरकर देखा कि उत्सव स्थान पर बड़ी भीड़ है। जिधर देखें उधर हरिनाम की गर्जना हो रही है। नौका में बैठते समय कुछ भक्त लोगों ने श्री रामकृष्ण से विनती की थी—'आज आप किसी भजन मण्डली में शामिल न हों। आज भजन करने लगेंगे तो देह की सुधि भूलकर समाधिमग्न हो जायेंगे और इससे आपका दर्द अनायास बढ़ जाएगा।'

मन्दिर में पहुंचते ही श्री रामकृष्ण को भावावेश हो गया। उनके देवदर्शन करते समय ही वहां एक भजन मण्डली आ पहुंची। वहां ऐसी प्रथा थी कि प्रत्येक भजन मण्डली पहले देव के सामने कुछ समय तक भजन करे और फिर वहां से निकलकर गंगा के किनारे बालू पर बैठकर भजन करे।

उस भजन मण्डली के वहां रहते ही एक अच्छे हृष्ट-पुष्ट जटाधारी, मुद्रा लगाए हुए गौरवर्ण बाबा जी घूमते-फिरते माला जपते हुए आ पहुंचे। भजन मण्डली को उत्साह दिलाने के लिए ही सम्भवत: वे एकदम उसमें सम्मिलित हो गए और भावाविष्ट होने के समान हाथ हिलाते हुए हुंकार करते हुए नाचने लगे।

देवदर्शन करके सभामंडप में ही एक ओर खड़े होकर श्री रामकृष्ण भजन सुन रहे थे। बाबा जी का वह वेश और ठाटबाट देखकर वे कुछ मुस्कराते हुए नरेन्द्र की ओर देखकर बोले—'देखो, ढंग से देखो।' उनके मुंह से ये शब्द सुनकर शिष्यगण हंसने लगे और आज श्री रामकृष्ण को भावाविष्ट न होते तथा अच्छी सावधानी से व्यवहार रखते देख उनको बड़ा आनन्द हुआ। पर इधर तो भक्तगण बाबाजी की ओर देखने में ही मस्त मग्न थे और उधर श्री रामकृष्ण कभी के वहां से निकलकर कूदकर उस भजन मंडली के बीच आकर खड़े हो गए थे तथा भावाविष्ट होकर उनका देहभाग प्राय: लुप्त हो चुका था। इस आकस्मिक स्थिति को देखकर उनकी भक्त मंडली में हलचल मच गई, उनके चेहरे उतर गए और सबके सब दौड़कर भजन मंडली में घुस गए तथा उन्होंने श्री रामकृष्ण को घेर लिया।

उस दिन सारे दिन बहुत परिश्रम होने के कारण, रात-भर श्री रामकृष्ण के शरीर में दाह हो रहा था तथा शरीर में पीड़ा भी थी, इस कारण उन्हें रात-भर नींद बिल्कुल नहीं आई; और दूसरे दिन स्नान पर्व था, इसलिए उस दिन गंगा स्नान और श्री रामकृष्ण के दर्शन के लिए कलकत्ता से बहुत लोग आए थे। इससे भी उन्हें बहुत कष्ट हुआ। पहले ही से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उस पर भी उत्सव के दिन तीन-चार घण्टे वर्षा में बिताने पड़े तथा बहुत समय तक समाधिमग्न रहने के कारण उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। भक्त लोग पुन: डाक्टर राखालचन्द्र को बुलाकर लाए। डाक्टर साहब बोले—'यह सब वर्षा में भीगते रहने का और बारम्बार समाधिमग्न होने का परिणाम है। पुन: ऐसा न होने पाए, इस बात की तुम्हें सावधानी रखनी चाहिए, अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।' डाक्टर के चले जाने पर भक्त मण्डली ने आपस में निश्चय किया कि अब

आगे ऐसा कभी न होने देने के लिए जितनी सावधानी हो सकती है, रखी जाएगी। उन लोगों ने श्री रामकृष्ण से प्रार्थना की। लेकिन श्री रामकृष्ण ने किसी भी बात की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप उनकी बीमारी बढ़ती ही गई। यहां तक कि उनके लिए भोजन ग्रहण करना असम्भव हो गया तथापि उन्होंने आगन्तुक अतिथियों के साथ साक्षात्कार बन्द नहीं किया और उनके साथ दिन-रात उसी तरह वार्तालाप करते रहे।

एक दिन उनके गले से रक्त का बहुत मात्रा में स्राव हुआ। डाक्टरों ने देखकर कैंसर बताया। उनके प्रमुख शिष्यों ने उनसे कलकत्ता के प्रसिद्ध डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार का इलाज करने का अनुरोध किया। सन् 1885 के सितम्बर मास में एक छोटा-सा घर किराए पर लिया गया। उनकी धर्मपत्नी ने भी उसके एक कोने में स्वामी की देखभाल के लिए आसन जमा लिया।

रात्रि के समय में अन्तरंग शिष्य उनकी देखभाल करते। उनमें से अधिकतर शिष्यों की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। वे अपनी सम्पत्ति गिरवी रखकर, उधार लेकर व घर की वस्तुएँ गिरवी रखकर अपने गुरु की चिकित्सा कराने लगे। इससे उनका पारस्परिक सम्पर्क घनिष्ठतर हो गया।

डाक्टर सरकार युक्तिवादी थे। वे श्री रामकृष्ण के धार्मिक विचारों से सहमत न थे और इस बात को वे छिपाते भी नहीं थे। परन्तु अपने रोगी के सम्बन्ध में उनका परिचय जितना अधिक बढ़ता गया, उनके प्रति उनकी श्रद्धा भी उसी अनुपात में बढ़ती गई और अन्त में बिना कुछ लिए ही वह श्री रामकृष्ण की चिकित्सा करने लगे। वे दिन में तीन बार श्री रामकृष्ण को देखने आते थे और कई-कई घण्टे तक उनके पास बैठे रहते थे।

डाक्टर सरकार ने श्री रामकृष्ण से कहा—'आपसी एकान्तिक सत्य-निष्ठा के कारण ही मैं आपसे इतना प्रेम करता हूँ। आप जिस वस्तु को सत्य समझकर विश्वास करते हैं, एक क्षण के लिए भी उससे विच्युत नहीं होते।...यह मत समझिए कि मैं आपकी खुशामद कर रहा हूं। यदि मेरे पिता भी गलत मार्ग पर हों तो मुझे उन्हें वैसा कहने में संकोच नहीं होगा।'

परन्तु श्री रामकृष्ण के शिष्य जिस धार्मिक भक्ति भावना से उनकी

पूजा करते थे, उसकी डाक्टर सरकार ने स्पष्ट शब्दों में निन्दा की—

'यह कहना कि निराकार भगवान ने मनुष्य के रूप में अवतार धारण किया है, समस्त धर्मों का ही विनाश है।'

श्री रामकृष्ण मृदु हास्य के साथ चुप रहे। परन्तु शिष्यों ने इस सब आलोचना में आग्रहपूर्वक योग दिया, जिससे उनकी पारस्परिक श्रद्धा और अधिक बढ़ गई और अपने गुरु के प्रति, जो कि शारीरिक यंत्रणा द्वारा और भी उद्दीप्त होते जा रहे थे, उनका विश्वास पहले से ही दृढ़तर हो गया। उन्होंने इस बात को समझने की पूरी कोशिश की कि उनके गुरु को ऐसी कठिन परीक्षा में से क्यों गुजरना पड़ रहा है और इस बारे में उनमें दो विभिन्न दल हो गए।

उद्धार प्राप्त पुरातन पापी गिरीशचन्द्र के नेतृत्व में एक दल ने घोषणा की कि श्री रामकृष्ण ने स्वेच्छापूर्वक यह रोग अपने ऊपर लिया है, जिससे कि उनके सन्देश का प्रचार करने वाले शिष्यों में घनिष्ठ एकता की स्थापना हो सके। दूसरी ओर युक्तिवादी दल ने जिसका नेता नरेन्द्र था, यह अभिमत प्रकट किया कि गुरु का शरीर भी अन्य मनुष्यों की भाँति प्रकृति के आधीन है। परन्तु दोनों दलों के अनुयायी श्री रामकृष्ण के अन्दर एक दिव्य सत्ता की उपस्थिति को स्वीकार करते थे और काली पूजा के दिन जबकि श्री रामकृष्ण ने उन्हें बिना किसी प्रकार की सूचना दिये समाधि में सारा दिन व्यतीत कर दिया तो उन्होंने आश्चर्यपूर्वक इस बात का अनुभव किया कि जगत्माता उनके अन्दर वास कर रही हैं।

इस अनुभूति से जिस आनन्दातिरेक का उदय हुआ, वह खतरे से खाली न था और विकृत भावप्रवणता की उत्पत्ति ही सबसे मुख्य खतरा थी। शिष्यगण उच्च हास्य व क्रन्दन एवं गान के साथ दिव्य दर्शन व भावावेश लाभ करने का दिखावा करने लगे। उस समय नरेन्द्र ने पहली बार अपनी इच्छा शक्ति व तर्क के सामर्थ्य का प्रदर्शन किया।

उसने घृणा के साथ उनका तिरस्कार करते हुए उनसे कहा—'गुरु ने वीरतापूर्ण तपोमय जीवन और ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्राणपण संघर्ष का मूल्य देकर समाधि शक्ति को प्राप्त किया है और तुम लोग यदि झूठ नहीं बोलते तो तुम्हारे उत्तेजित भावावेश रुग्ण कल्पनाओं की वाष्प राशि के

अतिरिक्त और कुछ नहीं है। रुग्ण व्यक्तियों को अपने स्वास्थ्य के प्रति और अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। उन्हें अधिक मात्रा में आहार करने और नारी सुलभ हास्यास्पद हिस्टरियां के से दौरों के विरुद्ध संग्राम करने की जरूरत है। सावधान हो जाओ! जो लोग दिखावटी भावावेश के धर्म को प्रोत्साहन देते हैं उनमें से अस्सी फीसदी बदमाश और पन्द्रह फीसदी पागल हो जाते हैं।

उसके शब्दों ने रामबाण औषधि का चमत्कार दिखाया। वे लज्जित हुए और उनमें से अधिकांश ने नम्रतापूर्वक यह स्वीकार किया कि उनके भावावेश केवल दिखावटी थे। नरेन्द्र का कार्य यही समाप्त नहीं हुआ। उसने उन सब नवयुवकों को संगठित किया और उन्हें कठोर संयम का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया। कर्मक्षेत्र में उसने उन्हें किसी एक निश्चित लक्ष्य को लेकर कर्म करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार इस तेजस्वी शिष्य ने श्री रामकृष्ण मिशन के भावी सम्राट के रूप में अपने आपको प्रगट करना आरम्भ किया। यद्यपि अभी तक वह स्वयं अपनी कठिनाइयों, संग्रामों से मुक्त नहीं हो पाया था। उसके निकट ये दिन निराशापूर्ण संकट के दिन थे, उसे अपनी प्रकृति की परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच चुनाव करना था, इसलिए ये दिन उसके लिए हल चलाने, बीज बोने व अपनी आत्मा को भावी फसल के लिए तैयार करने के दिन थे।

श्री रामकृष्ण की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही गई। डाक्टर सरकार ने उन्हें कलकत्ता गांव ले जाने का परामर्श किया। सन् 1885 दिसम्बर के मध्य में उन्हें नगर के समीप कोसीपुर सुरम्य उद्यान में ले जाया गया और अपने जीवन के शेष अन्तिम आठ मास उन्होंने वहीं पर व्यतीत किये। उनके बारह चुने हुए अन्तरंग शिष्य क्रमशः नरेन्द्र, राखाल, बाबूराम, निरंजन, योगीन, लाटू, तारक, दोनों गोपाल, काला, शशि और शरत, अंत समय तक उनके साथ रहे। नरेन्द्र उनके समस्त कार्यों व उपासना आदि धार्मिक कृत्यों की देखभाल करता था। उन्होंने गुरु से प्रार्थना की कि वे भी उनके साथ अपने स्वास्थ्यलाभ की प्रार्थना में सम्मिलित हो जायें। इसी समय उनके मत से सहमत एक पंडित श्री रामकृष्ण के दर्शनों के लिए आये, फलतः श्री रामकृष्ण के शिष्यों ने समय पाकर अपनी प्रार्थना को पुनः

दोहराया ।

पंडित ने श्री रामकृष्ण से कहा—

'धर्मशास्त्र कहते हैं कि आप जैसे महात्मा अपनी इच्छा-शक्ति से ही अपने आपको रोग मुक्त कर सकते हैं ।'

श्री रामकृष्ण ने उत्तर दिया—

'मैंने अपना मन चिरकाल के लिए भगवान के अर्पण कर दिया है। क्या तुम चाहते हो कि मैं उसे फिर वापिस मांगूं ?'

उनके शिष्यों ने अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए इच्छा न करने पर श्री रामकृष्ण का तिरस्कार किया । श्री रामकृष्ण ने कहा—

'क्या तुम समझते हो कि मैं जानबूझकर कष्ट भोग रहा हूँ ? मैं चाहता हूं कि मैं अच्छा हो जाऊं, परन्तु यह सब मां की इच्छा पर निर्भर है ।'

'तो उससे प्रार्थना कीजिए ।'

'यह कह देना बहुत सहज है, परन्तु मैं अपने मुंह से कुछ नहीं कह सकता ।'

नरेन्द्र ने कहा—'परन्तु हमारे लिए ।'

गुरु ने मधुर स्वर में उत्तर दिया—'बहुत अच्छा मैं यत्न करके देखूंगा कि मैं क्या कर सकता हूं ।'

शिष्यगण उन्हें कुछ घण्टों के लिए अकेला छोड़कर चले गए। जब वे वापिस आए तो गुरु ने कहा—

'मैंने मां से कहा था, मां मैं तकलीफ के कारण कुछ खा नहीं सकता। ऐसा कर दो कि मैं कुछ खा सकूं। उसने तुम सब की तरफ निर्देश करके मुझे उत्तर दिया—'क्यों ! क्या तू इन सब मुखों से नहीं खा सकता। मैं लज्जित हो गया और आगे कुछ न कह सका ।'

कुछ दिन बाद उन्होंने कहा—

'मेरी शिक्षा प्रायः समाप्त हो चुकी है। लोगों को सिखाने लायक अब मेरे पास कुछ नहीं रहा है। कारण, मुझे जगत के सब पदार्थ भगवतमय दिखाई देते हैं, तो मैं किसे शिक्षा दे सकता हूं ।'

1 जनवरी 1886 को वे कुछ स्वस्थ प्रतीत हुए और उन्होंने कुछ दूर तक उद्यान में भ्रमण भी किया। वहां उन्होंने अपने शिष्यों को आशीर्वाद भी

दिया। शिष्यों के ऊपर उनके आशीर्वाद का प्रभाव भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हुआ। कुछ नीरव समाधि के रूप में एवं अन्यों पर सरस आनन्दोच्छ्वास के रूप में। परन्तु इस विषय में सब एकमत थे कि आशीर्वाद को उन्होंने एक विद्युत धक्के के समान एक शक्ति के प्रवेश के रूप में ग्रहण किया है, जिससे कि प्रत्येक ने अपने आदर्श को निःसन्दिग्ध रूप में उपलब्ध कर लिया है। बाग में गुरु के अपने शिष्यों को आशीर्वाद देने पर उन शिष्यों ने आनन्दातिरेक के वशवर्ती हो अन्य शिष्यों को भी जो कि घर के अन्दर कार्य कर रहे थे, उस आशीर्वाद का आनन्दोपयोग करने के लिए बाहर बुला लिया।

गुरु की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर विनम्र लाटू और शरत् ब्राह्मण उनके कमरे की सफाई व बिस्तरे को ठीक-ठाक कर रहे थे। उन्होंने नीचे से पुकार सुनी और सारे दृश्य को ऊपर से देखा, परन्तु अपने आनन्द के हिस्से को छोड़कर अपने स्नेहमय सेवा के कार्य को जारी रखा।

अकेला नरेन्द्र ही असन्तुष्ट रहा।

उसके पिता की मृत्यु, सांसारिक चिन्ताओं और उसके हृदय की ज्वाला ने उसे खोखला बना दिया था। उसने अन्य सबको परिपूर्णता लाभ करते देखा और अपने आपको परित्यक्त-सा अनुभव करने लगा। उसकी वेदना को सांत्वना प्रदान करने लायक कोई आशाजनक किरण दिखाई न देती थी। उसने श्री रामकृष्ण से विनती की कि वे कुछ दिनों के लिए उसे समाधिस्थ करके उसके कष्टों का निवारण कर दे। आज गुरु ने कठोरतापूर्वक उसका तिरस्कार कर दिया। (वे जिनके लिए सर्वापेक्षा कम आशा करते थे, उनके लिए ही सबसे अधिक स्नेहभाव रखते थे।) और इन तुच्छ विचारों के लिए उसे डांटा। उन्होंने कहा कि उसे अपने परिवार के पोषण के लिए कुछ प्रबन्ध करना चाहिए तब उसके कष्ट दूर हो जायेंगे और उसे सब कुछ प्राप्त हो जाएगा। नरेन्द्र एक पथभ्रष्ट मेमने के समान रुदन करने लगा और मलिन व अपरिष्कृत वेश में इधर-उधर भटकने लगा। वह यंत्रणाकातर होकर आर्तनाद करने लगा। एक अनधिगम्य प्राप्ति की तीव्र वासना से उसकी देह और मन जलने लगा और उसकी आत्मा को कहीं शान्ति न मिल सकी। श्री रामकृष्ण दूर ही से उसकी इन उद्भ्रान्त गति-

विधियों को सस्नेह करुणापूर्वक लक्ष्य करते रहे। वे अच्छी तरह जानते थे कि स्वर्गीय शिकार को वशीभूत करने से पूर्व उसकी गन्ध पाना आवश्यक है। उन्होंने लक्ष्य किया कि नरेन्द्र की अवस्था में उद्वेगजनक कोई लक्ष्य नहीं है। कारण अपने अविश्वास के सम्बन्ध में कितनी ही शेखी बघारने पर भी वह असीम व अनन्त की प्राप्ति के लिए व्याकुल है। उसने मनुष्यों के बीच देवताओं का लाभ किया है, इस बात को श्री रामकृष्ण जानते थे। श्री रामकृष्ण ने अन्य शिष्यों की उपस्थिति में नरेन्द्र का मुख स्नेहपूर्वक चूम लिया। वे उसमें भक्ति के प्रेम द्वारा ज्ञान के समस्त चिह्नों को प्रत्यक्ष देखते थे।

श्री रामकृष्ण ने इस बात को कभी नहीं छिपाया कि वे उसे अपना उत्तराधिकारी समझते हैं। उन्होंने एक दिन उससे कहा।

'मैं इन तरुण युवकों को तुम्हारे सुपुर्द करता हूं। तुम इनकी आध्यात्मिकता को उन्नत करने में लग जाओ।'

और उन्हें आश्रम जीवन के योग्य बनाने के लिए श्री रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को जाति का कोई ख्याल न करते हुए सबके द्वार से भिक्षा माँगने का आदेश दिया। मार्च मास के अन्त में लगभग उन्होंने अपने शिष्यों को संन्यासी का वेश, गेरुवे वस्त्र धारण कराए तथा एक प्रकार आश्रम जीवन की दीक्षा दी।

अभिमानी नरेन्द्र ने त्याग का दृष्टान्त प्रस्तुत किया। परन्तु बड़ी कठिनाई के साथ वह आध्यात्मिक अहंकार को त्याग सका।

एक दिन नरेन्द्र ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति की परीक्षा करने के लिए अपने साथी कालीप्रसाद से कहा कि ध्यानमग्न अवस्था में वह उसका स्पर्श करे। काली ने वैसा ही किया और वह भी तत्काल उसी अवस्था को प्राप्त हो गया। श्री रामकृष्ण ने जब यह समाचार सुना तो नरेन्द्र को तुच्छ से उद्देश्य के लिए अपना बीज जमीन में फेंकने के लिए बुरी तरह फटकारा और विचारों को इस प्रकार दूसरे के अन्दर संक्रमित करने का पूर्णरूप से निषेध किया। आत्मा की पूर्ण स्वतंत्रता के विरुद्ध कोई भी प्रयास एक अभिशाप है। तुम्हें दूसरों की सहायता करनी चाहिए, परन्तु अपने विचारों को दूसरे के ऊपर आरोपित नहीं करना चाहिए।

कुछ समय के अनन्तर ध्यान करते समय नरेन्द्र ने अनुभव किया कि उसके मस्तिष्क के पश्चाद्वर्ती प्रदेश में एक ज्योति चमक रही है अकस्मात उसकी चेतना लुप्त हो गई और वह परब्रह्म में लीन हो गया। वह उस भयानक निर्विकल्प समाधि की गम्भीरता में डूब गया, जिसे कि वह इतने दिन से पाना चाहता था, परन्तु श्री रामकृष्ण उसे देने से इन्कार करते थे।

दीर्घकाल के बाद जब उसे पुनः चैतन्य लाभ हुआ तो उसे प्रतीत होने लगा कि उसकी कोई देह नहीं है, वह केवल एक मुखमण्डल मात्र है और वह चिल्ला उठा, 'मेरा शरीर कहां है?'

उसके साथी अन्य शिष्य डर गए और गुरु के पास भागे गए, परन्तु श्री रामकृष्ण ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—

'अच्छा है! उसे कुछ देर तक इसी हालत में रहने दो! उसने मुझे बहुत दिनों तक परेशान किया है।'

जब नरेन्द्र पूर्णरूप से पुनः पृथ्वी पर आ गया तब वह एक अनिर्वचनीय शान्ति में स्नान कर चुका था। वह गुरु के समीप आया। श्री रामकृष्ण ने उससे कहा—

'अब तो मां ने तुझे सब कुछ दिखा दिया है परन्तु जो कुछ देखा है, वह ताले के अन्दर बन्द रखो और उसकी चाभी मेरे पास रहेगी। जब तुम मां का कार्य समाप्त कर लोगे तो तुम्हें यह खजाना फिर मिल जाएगा।'

और उन्होंने इसके बाद अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिए क्या करना चाहिए, इस बारे में कुछ आवश्यक परामर्श दिए।

श्री रामकृष्ण का अन्त समय जितना ही निकट आता जाता था, वह उतने ही निर्लिप्त होते जाते थे और अपने शिष्यों की वेदना के ऊपर अपनी शान्ति के स्वर्ग को बिछा रहे थे। 'कथामृत' जो कि एक प्रकार से उनकी मृत्यु शय्या के पास ही लिखी गई थी, उसमें रात्रि के समय शिष्यों की भाराक्रान्ता निस्तब्धता के बीच, इस प्रवहमान आत्मा की मर्मर ध्वनि का प्रत्येक संगीत लिपिबद्ध है, जब कि उद्यान में चन्द्रमा की चांदनी में मृदु दक्षिण समीर वृक्षों की शाखा-प्रशाखाओं को मर्मरित कर रहा था। उनके मित्र व स्नेही जब उनके वियोग के विचार मात्र से ही व्याकुल थे और किसी प्रकार सांत्वना न पाते थे, तब उन्होंने अस्फुट स्वर में कहा—

राधा ने कृष्ण से कहा—'ऐ मरे प्यारे ! तुम मेरे मन में ही वास करो और मनुष्य के रूप में पुनः मत आओ !' परन्तु थोड़ी ही देर बाद वह अपने प्रियतम के मानवीय रूप के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठी। परन्तु भगवान की इच्छा पूर्ण होती थी और कृष्ण चिरकाल तक मानवीय रूप में प्रगट न हुए···उसके बाद प्रभु आए, और मनुष्य के रूप में अवतरित हुए और उसके बाद वे अपने शिष्यों के साथ दिव्य मां की गोद में वापस चले गए।'

राखाल चीत्कार कर उठा—'तो जब तक हम नहीं जाते, तब तक आप भी न जावें।'

श्री रामकृष्ण मुस्कराये और मृदु स्वर में कहने लगे—

'बाउलों[1] का एक दल अकस्मात एक घर में घुस गया। वे भगवान् का नाम ले-लेकर आनन्द विभोर होकर नाचने लगे और उन्होंने जिस प्रकार अकस्मात ही घर में प्रवेश किया था, उसी प्रकार अकस्मात ही घर छोड़कर बाहर चले गए। परन्तु घर के स्वामियों को यह पता भी न लग सका कि उन्होंने ऐसा क्यों किया···।'

यह कहकर उन्होंने एक विषादपूर्ण आह भरी।

'कभी-कभी मैं भगवान से यह प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे पुनः इस पृथ्वी पर न भेजें।' परन्तु उन्होंने अपना कथन जारी रखा—

'वह (भगवान) उन भक्तों के प्रेम में वशीभूत होकर, जो कि भगवान को प्यार करते हैं, बार-बार मानवीय शरीर का चोला धारण करते हैं।'

यह कहकर वे एक अवर्णनीय स्नेह के साथ नरेन्द्र की तरफ ताकने लगे।

9 अप्रैल को रात्रि के समय गर्मी के कारण इधर-उधर हिलते पंखे की तरफ देखकर श्री रामकृष्ण कहने लगे—

'ठीक उसी तरह जैसे कि मैं अपने सम्मुख हिलते हुए इस पंखे को देख रहा हूं, उसी प्रकार मैंने परमात्मा को भी देखा है।···और मैं देखता हूं···।'

---

1. भगवान उन्मत्त हिन्दुओं का एक सम्प्रदाय है, जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया है।

उन्होंने अपना हाथ नरेन्द्र के हाथ पर रखते हुए बहुत ही क्षीण स्वर में कहा और पूछने लगे—'मैंने क्या कहा है ?'

नरेन्द्र ने कहा—'मुझे कुछ साफ सुनाई नहीं देता।'

तब श्री रामकृष्ण ने संकेत से कहा कि 'वह, (परमात्मा) और उनकी अपनी सत्ता अभिन्न है।'

'हां', नरेन्द्र ने कहा—'मैं वह हूं।'

श्री रामकृष्ण बोले, 'तथापि परमानन्द के उस भोग के लिए—केवल एक रेखा बीच में दखल दिए है।'

नरेन्द्र ने उत्तर दिया—'परन्तु महापुरुष अपनी मुक्ति के बाद भी संसार में रहते हैं। वे मानव जाति की मुक्ति के लिए अपने 'अहम्' व उसकी यंत्रणा को कायम रखते हैं।'

कुछ देर तक पूर्ण निस्तब्धता के बाद श्री रामकृष्ण ने फिर कहा—'घर की छत मनुष्य को दिखलाई देती है, परन्तु उस तक पहुंचना बहुत कठिन है।···परन्तु जो उस पर पहुंच जाता है, वह नीचे रस्सा लटकाकर दूसरों को भी अपने पास ऊपर खींच सकता है।'

यह उन दिनों में से एक दिन था जब कि वे एक और अद्वितीय में ही सबकी उपलब्धि करते थे, जबकि वे यह देखते थे कि बलिपशु, यूपकाष्ठ व जल्लाद ये तीनों एक ही वस्तु हैं और यह देखकर वे दुर्बल कण्ठ से चिल्ला उठे—'हे भगवान, यह क्या दृश्य है ?' यह कहकर वे भावाविष्ट होकर मूर्छित हो गए, परन्तु जब उन्हें चैतन्यलाभ हुआ तो फिर कहने लगे, 'मैं स्वस्थ हूं। मैं कभी भी इतना स्वस्थ नहीं था।'

जो लोग यह जानते हैं कि गले के फोड़े की बीमारी, जिससे कि उनकी मृत्यु हुई, कितनी भयानक होती है, वे उनकी उस कभी न मिटने वाली करुणा व स्नेहार्द्र हंसी को, जो उनके मुख पर हर समय खेलती रहती थी, देखकर आश्चर्य से स्तब्ध रह जाते थे।

इस महान कष्ट में भी उन्होंने कहा—

'देह ही केवल कष्ट पाता है। जब मन भगवान के साथ संयुक्त हो जाता है तो उसे कष्ट का अनुभव ही नहीं हो सकता।'

और पुनः—

'देह और उसकी यंत्रणा को परस्पर एक दूसरे में व्यस्त रहने दो। मेरे मन, तुम आनन्द में मग्न रहो। अब मैं और मेरी मां चिरकाल के लिए एक हो गए हैं।'

मृत्यु से तीन-चार दिन पूर्व उन्होंने नरेन्द्र को अपने समीप बुला कर उसके साथ एकांत में रहने की इच्छा प्रगट की। उन्होंने स्नेहमय दृष्टि से उसकी ओर देखा और समाधिस्थ हो गए। उन्होंने नरेन्द्र को भी अपने प्रवाह से आच्छन्न कर दिया। जब वह उसके प्रभाव से मुक्त हुआ तो उसने श्री रामकृष्ण को अश्रुमोचन करते हुए देखा। श्री रामकृष्ण ने उससे कहा—

'आज मैंने तुम्हें अपना सब कुछ दे दिया है और अब मैं सर्वस्वहीन एक गरीब फकीर मात्र हूं। इस शक्ति से तुम संसार का महान कल्याण कर सकते हो और जब तक तुम वह सम्मान न प्राप्त कर लोगे तब तक तुम न लौटोगे।'

उसी क्षण से उनकी सारी शक्तियां नरेन्द्र के अन्दर संक्रान्त हो गईं। गुरु और शिष्य एक हो गए।

अगस्त महीने की 13 या 14 तारीख को श्री रामकृष्ण का रोग बहुत ही बढ़ गया। बिस्तर के आसपास लोग स्तब्ध बैठे थे। उनका क्लेश किसी से देखा नहीं जाता था। नरेन्द्र उनके बिल्कुल समीप बैठा था। एक क्षण भर—एक ही क्षण के लिए उनके मन में विचार आया कि जो राम और कृष्ण हुआ था अब रामकृष्ण होकर आया है, इस प्रकार ये बारम्बार कहा तो करते हैं। पर उनके इन कष्टों को देखकर मन में संशय हुए बिना नहीं रहता है। इस समय यदि ये पुनः ऐसा ही करके दिखलाएंगे, तो मैं सत्य मानूंगा।'

इस विचार के आने-भर की देर थी कि एकदम उसकी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए श्री रामकृष्ण गम्भीर स्वर में बोल उठे—'अं···अभी तक शंका, अभी भी संशय बना है न ? पक्का ध्यान में रख कि जो राम और कृष्ण हुआ था वही अब रामकृष्ण होकर आया है। यह तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं वरन् प्रत्यक्ष रूप से सत्य है।' इन शब्दों के कान में पड़ते ही सब भक्तगण और विशेष कर नरेन्द्र बिल्कुल चकित हो गए।

16 अगस्त ! आज रविवार है (और श्राविणी पूर्णिमा) सवेरे ही उन्होंने एक भक्त से पंचांग देखकर कोई अच्छा दिन बताने के लिए कहा। उस दिन के शुभाशुभ फल बताकर वह भक्त आगे का दिन अर्थात भाद्रप्रद कृष्ण प्रतिपदा का फल ज्योंही बताना आरम्भ करने लगे। उस दिन उनका सभी व्यवहार निराला दीखने लगा।

दोपहर के समय डाक्टर नवीनपाल उनको देखने के लिए आए श्री रामकृष्ण उनसे बोले—'आज अत्यन्त क्लेश हो रहा है, पीठ का कमर के पास का भाग मानो जल रहा है।' ऐसा कहकर उन्होंने अपना हाथ सामने किया। नाड़ी देखकर डाक्टर श्री रामकृष्ण की ओर एकटक देखने लगे।

श्री रामकृष्ण ने पूछा—'है कोई उपाय ?'

डाक्टर साहब को समझ नहीं पड़ा कि अब क्या बोलना चाहिए।

श्री रामकृष्ण आप ही बोले—'अब कोई उपाय नहीं है। रोग असाध्य हो गया है, बस यही बात है न ?'

यह सुनकर डाक्टर नीचा सिर करके बहुत धीमे स्वर में ही बोले—'हां, सचमुच ऐसा ही मालूम होता है।'

उसी समय देवेन्द्र की ओर मुख करके श्री रामकृष्ण ने कहा—'ये लोग इतने दिनों से मुझसे कहते थे—रोग अच्छा हो जाएगा—और यही कहकर मुझको यहां ले आए और अब रोग को आराम नहीं होता तो व्यर्थ ही कष्ट क्यों उठाया जाए ?'

डाक्टर वहां से चले गए। उस समय से फिर उन्होंने अपने रोग, दर्द और औषधि की चर्चा भी नहीं की। कुछ समय बाद वह कहने लगे—'देख, हमारी हंडी-हंडी दाल-भात खाने की इच्छा हो रही है—' यह सुनकर देवेन्द्र उन्हें एक छोटे बच्चे के समान समझाने लगा, पर वे किसी तरह मानते ही नहीं थे।

जिस समय से डाक्टर गए, उसी समय से उनकी मुद्रा बिल्कुल बदल गई। वे अपनी बीमारी को बिल्कुल भूलकर बड़े आनन्दित दीखने लगे। कुछ ही देर बाद एक सज्जन उनसे योग सम्बन्धी प्रश्न पूछने आए। उनके साथ लगभग दो घण्टे बातचीत करते रहे। उनके चेहरे पर रोग या दर्द सम्बन्धी

कोई भी चिह्न नहीं दीखते थे।

कुछ देर बाद डाक्टर आए और उनको एक औषधि देकर बोले—'इस औषधि से आपको अवश्य ही लाभ होगा।'

उसे लेकर श्री रामकृष्ण कुछ क्रुद्ध से होकर बोले—'मां ! और कितने दिनों तक तू मुझे जूठन खाने में लगाने वाली है।'

उस रात वे नित्य की अपेक्षा अधिक अन्न खा सके और बड़े आनन्द से कहने लगे—'मुझको कुछ भी नहीं हुआ है, केवल गले की ओर उंगली दिखाकर यह यहां पर कुछ हुआ-सा दिखाई देता है।'

रात को वे तकिए के सहारे टिककर अपने बिस्तर पर बैठे हुए बहुत देर तक लोगों से बातचीत करते रहे। सिर्फ उनका शरीर अन्य दिनों की अपेक्षा बहुत गर्म लगता था। कुछ देर बाद वे बोले—'तुम लोग मुझको हवा करो।'

लोग हवा करने लगे। नरेन्द्र उनके पैरों को अपनी गोदी में रखकर धीरे-धीरे दाब रहा था। श्री रामकृष्ण उससे बोले—'इन लड़कों की अच्छी खबरदारी रखना भला।' उन्होंने इन शब्दों का उच्चारण उस रात को कम से कम तीन-चार बार किया होगा।

कुछ समय बाद वे बोले—'मुझको कुछ नींद आ रही है, सोता हूं', ऐसा कहते हुए वे बिस्तर पर लेट गए। सवा दो या ढाई घण्टे तक उन्हें अच्छी नींद आई। एक बजे के लगभग उन्होंने एकदम करवट बदली। उसी समय भर्राए स्वर में 'ॐ ॐ' का उच्चारण होते हुए लोगों को सुनाई दिया। उस समय उनका सर्वांग रोमांचित हो गया था और मुखमण्डल अत्यन्त शान्त एवं तेजमय दिखाई देता था।

नरेन्द्र ने उनके पैरों को जल्दी-जल्दी परन्तु धीरे से एक तकिए पर रख दिया और स्वयं जीने की ओर दौड़ गया। उससे वह दृश्य देखा नहीं गया। एक डाक्टर पास ही बैठे थे। वे नाड़ी देखने लगे परन्तु उनकी नाड़ी का पता ही न लगा। तभी वे जोर-जोर से रोने लगे। वह भी अभी यही समझ रहा था कि यह हमेशा के समान समाधि ही है। इसी कारण वह एकदम जोर से चिल्लाकर बोला, 'कितना चिल्लाता है रे गधा।'

थोड़ी देर में नरेन्द्र भी ऊपर आ गया। अब तक सब लोग यही समझते

थे कि यह समाधि ही है। इसलिए उसको उतारने के लिए सभी ने 'हरि ओ३म्' का जोर-जोर से जाप करना शुरू किया।

सवेरे पांच बजे के करीब श्री रामकृष्ण का शरीर ठण्डा पड़ने लगा, तथापि कमर का भाग गरम लगता था; इसलिए कोई नहीं समझता था कि यह 'महासमाधि' है। पहले ही कुछ लोग अन्य डाक्टरों को लाने चले गए थे। डाक्टर सरकार आए और सब लक्षणों को देखकर उन्होंने इसे 'महा-समाधि' ही बताया।

तो भी किसी-किसी को अब तक संशय बना हुआ था। डाक्टर सरकार के जाने के बाद वहां कुछ संन्यासी आए और उन्होंने सब लक्षणों को देखकर इसको 'महासमाधि' होना ही प्रगट किया।

बस, हो गया। अब संशय के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रही। इधर-उधर एकदम कुहराम मच गया। भक्त मण्डली की दशों दिशाएं शून्य मालूम पड़ने लगीं। उन लोगों को इस विस्तृत जगत में अकले छोड़कर उनके इह लोक और परलोक के आधार, उनके सर्वस्व, उनके देवाधिदेव सदैव के लिए चले गए।

सवेरे ही यह दुखद समाचार सारे शहर में फैल गया था। प्रातःकाल ही नीचे की मंजिल की बैठक में एक सुन्दर विमान बनाकर उसे पुष्पमालादि से सजाकर उस पर श्री रामकृष्ण के शरीर को लाकर रख दिया गया था। सारे शहर में शोक की छाया डोल रही थी। उस महापुरुष के अन्तिम दर्शन करने के लिए चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड लोग काशीपुर के उस बगले में आकर इकट्ठे होने लगे।

दोपहर के समय श्री रामकृष्ण के शरीर तथा उनकी सब शिष्य मण्डली का फोटो उतारा गया। संध्याकाल तक लोगों की लगातार भीड़ लगी हुई थी। संध्या समय लगभग 6 बजे श्री रामकृष्ण के पार्थिव शरीर का अग्नि-संस्कार करने के लिए आखिरी जनसमूह रवाना हुआ। साथ में भजन मंडलियां थीं। चारों दिशाओं में हरिगान की गर्जना और श्री रामकृष्ण के जय-जयकार का घोष हो रहा था।

शीघ्र ही ये लोग काशीपुर के घाट पर पहुंचे। वहां कुछ समय तक भजन आदि होने के बाद चन्दन और तुलसी के काष्ठ की चिता पर श्री राम-

कृष्ण का शरीर स्थापित किया गया और थोड़ी देर में अग्निदेव ने अपना काम समाप्त कर दिया। तब फिर उनकी अस्थियों को एक तांबे के पात्र में रखकर शिष्य मंडली भरे हृदय से और अश्रुपूरित नेत्रों के साथ काशीपुर के बंगले की ओर वापस लौटी।

श्री रामकृष्ण के जीवन के कुछ रोचक प्रसंग

श्री रामकृष्ण के भांजे हृदय ने एक घटना के सम्बन्ध में बताया था, जो इस प्रकार है 'एक दिन श्री रामकृष्ण की इच्छा हुई कि शिवमूर्ति बनाकर उसकी पूजा करें। बचपन से ही उन्हें उत्तम मूर्ति बनाना आता था। इच्छा होते ही उन्होंने गंगाजी की मिट्टी लेकर नन्दी और शिव दोनों की सुन्दर प्रतिमायें बना लीं और उनकी पूजा में वे निमग्न हो गए। तभी अचानक मथुर बाबू वहां आ पहुंचे और यह देखने लगे कि इतनी तन्मयता से श्री रामकृष्ण क्या कर रहे हैं। तभी उनकी दृष्टि इन प्रतिमाओं पर पड़ी। मूर्ति थी तो छोटी, परन्तु बहुत उत्तम बनी थी। जब हृदय ने बताया कि ये मूर्ति मामा ने ही तैयार की है तो मथुर बाबू को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूजा होने के बाद उस मूर्ति को हृदय से लेकर पुन: मथुर बाबू ने बारीकी से देखा और बड़ी उत्सुकता से इस मूर्ति को रानी के पास भी देखने के लिए भेज दिया। इस मूर्ति को देखकर रानी को भी बहुत आश्चर्य हुआ। गदाधर को नौकर रखने की उनकी बहुत दिनों से इच्छा थी। आज उसके इस नए गुण को देखकर उनकी वह इच्छा और भी बढ़ गई। श्री रामकृष्ण के बड़े भाई रामकुमार से रानी ने गदाधर की नौकरी के लिए कहा। गदाधर ने सुनकर वह स्पष्ट उत्तर दिया—'एक भगवान के सिवा मुझे किसी दूसरे की नौकरी नहीं करनी है।'

एक बार श्री रामकृष्ण अपने ही विचारों में मग्न अपनी कोठरी के सामने के लम्बे बरामदे में से इधर से उधर टहल रहे थे। मन्दिर और

पंचवटी के बीच में एक अलग घर है—जिसे अब तक 'बाबू का घर' कहते हैं—उसी के एक हिस्से में मधुर बाबू अकेले बैठे थे। वहां से श्री रामकृष्ण का टहलना उन्हें स्पष्ट दीखता था। उस समय वे श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध में तथा अन्य काम-काज के बारे में कुछ विचार कर रहे थे। मधुर बाबू के वहाँ बैठे रहने की ओर श्री रामकृष्ण का ध्यान बिलकुल नहीं था।

अचानक मधुर बाबू चौंककर खड़े हो गए और दौड़ते हुए जाकर श्री रामकृष्ण के चरणों में लोटने लगे। उसके बाद वे उठे और उनके दोनों पैरों को जोर से पकड़कर रोने लगे। श्री रामकृष्ण ने कहा—'तू यह क्या कर रहा है? तू इतना बड़ा आदमी, रानी का दामाद, तू ही ऐसा करने लगा तो लोग क्या कहेंगे? शान्त हो उठ।'

बहुत देर बाद मधुर बाबू शान्त हुए और बोले—'अद्भुत दर्शन हुआ बाबा! आप टहलते समय सामने जाते थे तो ऐसा दीखता था कि आप नहीं वरन् साक्षात जगदम्बा ही सामने जा रही हैं। जब आप पीछे लौटते थे तब आप साक्षात महादेव ही दीखते थे। पहले मैं समझा कि मुझे भ्रम हो गया, पर आँखें मलकर देखा तो वही दृश्य। कितनी ही बार आँखों को मल-मलकर देखा पर दिखाई दिया वही दृश्य!' ऐसा कहकर मधुर बाबू पुनः रोने लगे।

श्री रामकृष्ण ने कहा—'मैं तो भाई इसे कुछ नहीं समझा।' लेकिन मधुर बाबू ने भावावेश में उनकी कोई बात नहीं सुनी। यह देखकर श्री रामकृष्ण को घबराहट हुई और सोचने लगे कि कोई यह बात जाकर रानी से कह दे तो वह क्या समझेगी? वह निश्चय ही यह समझेगी कि मैंने इसके ऊपर टोना-टोटका कर दिया है। यह सोचकर श्री रामकृष्ण पुनः मधुर बाबू को समझाने लगे। बहुत समझाने पर तब कहीं जाकर वह शान्त हुए।

मधुर बाबू के हलधर नाम के एक पुरोहित थे। श्री रामकृष्ण पर बाबूजी की इतनी भक्ति देखकर उसे ईर्ष्या होने लगी। वह मन में कहता था, इस मनुष्य ने जादू-टोना करके हमारे बाबूजी को वश में कर लिया है। मैं आज कितने दिनों से अपना प्रभाव उन पर डालना चाहता हूं, पर इसके

कारण मैं कुछ कर ही नहीं पाता। तिस पर भी बालक के समान स्वांग बनाता है। यदि इतना सरल है तो भला बताये हमें अपनी वशीकरण विद्या, पर वैसा नहीं करेगा। मैंने अपनी सारी विद्या लगा दी थी और बाबू मेरे वश में आ ही रहे थे कि न मालूम कहां से यह व्याधि आ गई।' इस तरह के विचारों से वह बड़ा चिन्तित रहता था।

उसे यह अवसर शीघ्र ही मिल गया। मथुर बाबू के जान बाजार के बाड़े में एक दिन संध्या समय श्री रामकृष्ण भगवत चिन्तन में तन्मय होकर अर्द्धबाह्य दशा में पड़े थे। पास में कोई नहीं था। कुछ समय पश्चात् श्री रामकृष्ण समाधि से उतरकर धीरे-धीरे सचेत हो रहे थे, तभी हलधर पुरोहित अचानक वहां आ गया और श्री रामकृष्ण को वहां अकेला देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ और उसने सोचा, इससे अच्छा अवसर और कब भला मिलेगा। उसने इधर-उधर सतर्कतापूर्वक देखा और उसके बाद श्री रामकृष्ण के पास आकर उन्हें धक्के लगाता हुआ बोला, 'क्यों रे भट्ट ! बाबू को जादू करके वश में कर लिया है ? बोल न रे ! अब क्यों चुप्पी साध ली है ? क्यों रे, ढोंग करता है ?' अर्द्ध समाधि में रहने के कारण श्री रामकृष्ण उस समय बोल ही नहीं सकते थे। श्री रामकृष्ण को बोलते न देखकर वह गुस्से में चिल्लाया—'जा रे ! नहीं बोलता तो मत बोल !' ऐसा कहकर उसने एक लात मारी और वहां से भाग खड़ा हुआ। श्री रामकृष्ण ने सोचा कि अगर मथुर बाबू को यह बात मालूम हो जायेगी तो हो सकता है, इस ब्राह्मण का कुछ अनिष्ट हो जाय। यही सोचकर उन्होंने मथुर बाबू से कुछ न कहा। लेकिन इसके कुछ दिनों बाद मथुर बाबू अन्य कारणों से हलधर से नाराज हो गए जिससे हलधर नौकरी से अलग कर दिया गया। बाद में एक दिन मामूली बातों में श्री रामकृष्ण ने उस दिन की बात मथुर बाबू को बतायी। उसे सुनकर वे क्रोध और दुख से संतप्त हो उठे और कहने लगे, 'बाबा ! यह बात मुझे पहले मालूम हो जाती तो वह ब्राह्मण कदापि जीवित न बचता।

मथुर बाबू ने एक मूल्यवान बनारसी दुशाला एक हजार रुपये में

खरीदा। इतनी कीमती और सुन्दर वस्तु वे किसे दें, यह सोचकर उन्होंने बड़े आनन्द से उसे श्री रामकृष्ण को समर्पित किया। उस दुशाले को ओढ़ने से उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। उसकी ओर वे बार-बार देखने लगे और बड़े आनन्द से इधर-उधर टहलने लगे। उस दुशाले को वह हरएक को दिखाने लगे और दिखाते समय कहते, 'देखो यह दुशाला मथुर ने एक हजार रुपये खर्च करके मेरे लिए ला दिया है।' पर बस, एक छोटे बालक के समान थोड़ी ही देर में सब आनन्द चला गया और मन में दूसरे ही विचार आने लगे। 'इस दुशाले में विशेष बात क्या है? इसमें ऊन और जरी के सिवाय तो और कुछ नहीं है, जिन पंचभूतों से सब चीजें तैयार होती हैं, उन्हीं से यह दुशाला भी बना है। गुण यही है कि इसमें ठंडक से बचत होती है। पर यह काम तो कम्बल से भी होता है। फिर इसमें इतना अधिक क्या है? और सब वस्तुओं के समान इससे भी सच्चिदानन्द की प्राप्ति तो नहीं होती, वरन् उल्टे इसे ओढ़ने से 'मैं सबसे श्रेष्ठ हूं।' इस प्रकार केवल अहंकार उत्पन्न होकर मनुष्य ईश्वर से दूर हट जाता है, पर इसका बड़ा भारी दोष है।' ऐसा सोचकर उन्होंने दुशाले को जमीन पर फेंक दिया और यह कहते हुए, 'इससे सच्चिदानन्द की प्राप्ति नहीं होती, थूः थूः।' उस दुशाले पर थूकते हुए उसे पैरों तले रौंद डाला। इतने ही से सन्तोष न मानकर वे उसे जलाने का प्रयत्न कर रहे थे कि तभी कोई वहां आ गया और श्री रामकृष्ण के हाथों से उसने उस दुशाले को छुड़ा लिया। मथुर बाबू को यह बात मालूम होने पर वे बोले, 'बाबा ने ठीक किया।'

एक दिन श्री रामकृष्ण शिउड़ जाने वाले थे। जाने की सब तैयारी हो चुकी थी। सदा सर्वकाल भावसमाधि में रहने के कारण श्री रामकृष्ण का शरीर छोटे बालक के समान अत्यन्त कोमल और सुकुमार हो गया था। थोड़ी ही दूर जाने के लिए उन्हें गाड़ी या पालकी की आवश्यकता होती थी। आज के लिए भी पालकी की व्यवस्था की गई। हृदय उनके साथ जाने वाला था ही। श्री रामकृष्ण लाल रेशमी वस्त्र पहने हुए थे। दोपहर का भोजन करके मुंह में पान दबाए हुए पालकी में बैठते समय चारों ओर

स्त्री-पुरुषों की बड़ी भीड़ लगी हुई उन्हें दिखाई दी। भीड़ देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और उन्होंने हृदय से पूछा—'हृदय आज यह इतनी भीड़ किसलिए हो गई है रे?'

हृदय—'और किसलिए? आप आज गांव जा रहे हैं और कुछ दिनों तक दर्शन नहीं मिलेगा, इस कारण आपको देखने के लिए इतनी भीड़ हो गई है।'

श्री रामकृष्ण 'मुझे तो सब लोग प्रतिदिन देखते हैं, फिर आज ही ऐसी नवीनता कौनसी है?'

हृदय—'आज लाल रेशमी वस्त्र पहना है और पान खाने से आपका मुंह बहुत सुन्दर दीखता है। और क्या है? इसी कारण लोग जमा हो गए हैं।'

अपने सुन्दर रूप से इन सब लोगों के आकृष्ट हो जाने की बात सुनते ही श्री रामकृष्ण के मन को धक्का लगा। वे सोचने लगे, 'हाय! हाय! इस क्षणभंगुर बाह्य सौंदर्य की ओर ही सबका ध्यान है। अन्तरात्मा की ओर कोई नहीं देखता। पहले ही से रूप के प्रति उदासीन भाव था। आज तो वह भाव सहस्र गुना बढ़ गया। वे बोले—'क्या? यत्किंचित एक मनुष्य को देखने के लिए इतनी भीड़ होगी? जा, आज मैं कहीं नहीं जाता।' यह कहकर श्री रामकृष्ण अपनी कोठरी में जाकर दुख से एक कोने में चुप बैठ गए। इसलिए उस दिन वे शिउड़ नहीं गए। हृदय तथा अन्य लोगों ने बहुत समझाया पर सब व्यर्थ रहा।

तीर्थ यात्रा करते हुए रामकृष्ण श्री वैद्यनाथ के पास एक गांव में से जा रहे थे। वहां के लोगों का दुख-क्लेश देखकर बाबा का हृदय पिघल गया। वे मथुर से बोले—'तू तो माता का कोठीवान है। इन सब लोगों में से प्रत्येक को एक-एक वस्त्र और एक-एक बार सिर में लगाने लायक तेल और पेट भर भोजन करा दे।'

मथुर पहले कुछ अनमने हो गए और बोले—'बाबा! इस तीर्थ-यात्रा के नाम से तो बहुत खर्च हो गया है और इन लोगों की संख्या भी बहुत है।

इन सबको अन्न-वस्त्र देने चले और भी अधिक खर्च होगा। अब कैसे किया जाए ?'

लेकिन श्री रामकृष्ण ने इनकी एक न सुनी। गांव के लोगों की निर्धनता और उनके दुख को देखकर उनका अन्तःकरण भर आया था और आंखों में अश्रुधारा बह चली थी। वे बोले—'दूर हो मूर्ख ! तेरी काशी को मैं नहीं चलता। चला जा, मैं इन्हीं के साथ रहूँगा। इनका कोई भी नहीं है, इनको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाता।' यह कहकर एक छोटे बालक के समान गला फाड़कर वे उन्हीं लोगों में जाकर रोने लगे।

यह हाल देखकर मधुर ने तुरन्त कलकत्ता से अनाज और कपड़ा मंगवाया और बाबा की इच्छानुसार सब कार्य किया। उन निर्धन लोगों के आनन्द को देखकर बाबा को भी बड़ा आनन्द हुआ और उनसे विदा लेकर वे मधुर बाबू के साथ काशी गए।

एक हाथ में मिट्टी और दूसरे हाथ में कुछ सिक्के लेकर वे गंगाजी के किनारे बैठ जाते थे और कहते थे—'अरे मन इसको पैसा कहते हैं; इससे अनेक प्रकार के सांसारिक सुख प्राप्त हो सकते हैं। गाड़ी, घोड़े, दास-दासी, कपड़े-लत्ते, तरह-तरह के खाने-पीने के पदार्थ और सब प्रकार के ऐश-आराम के सामान इस पैसे से मिल सकते हैं; पर संसार के आधे से अधिक झगड़े भी इसी पैसे के कारण होते हैं। इस पैसे को प्राप्त करने के लिए कष्ट उठाना पड़ता है। इसकी रक्षा करने के लिए श्रम करना पड़ता है। इसका नाश होने से दुख होता है तथा इसको होने से अभिमान उत्पन्न होता है। इससे कुछ परोपकार तो हो सकता है, पर इसके द्वारा ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। अरे मन ! जिस वस्तु में इतने दोष हैं और जिससे ईश्वर लाभ होना तो दूर रहा, वरन् ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में विघ्न उत्पन्न होता है, ऐसी वस्तु रखने से क्या लाभ ? उसका मूल्य और इस मिट्टी का मूल्य समान है; अतः इस पैसे को ही मिट्टी क्यों न कहा जाय ?'

ऐसा कहते हुए वे अपने हाथ की उन चीजों की अदल-बदल किया करते थे और 'पैसा मिट्टी, मिट्टी पैसा' इस प्रकार लगातार कहते हुए, ईश्वर

लाभ की दृष्टि से दोनों का मूल्य एक समान मानकर; अपने में पूर्ण निश्चय करके, मिट्टी और पैसे को मिलाकर सब गंगाजी में फेंक देते थे।

एक दिन स्वामी विवेकानन्द आदि संन्यासी भक्तों को त्याग की महिमा समझाते हुए बोले, 'त्याग, काया, वचन और मन से होना चाहिए।'

स्वामी विवेकानन्द बड़े खोजी स्वभाव होने के कारण उन्होंने अपने गुरुदेव की परीक्षा करने की ठानी। थोड़ी देर बाद अपने बिस्तर पर से उठकर श्री रामकृष्ण बाहर गए। स्वामीजी ने झट उनके बिस्तर के नीचे एक रुपया डाल दिया और इसका परिणाम बड़ी उत्सुकता से देखने के लिए बैठ गए।

ज्योंही श्री रामकृष्ण लौटकर अपने बिस्तर पर बैठे त्योंही उनके शरीर में कुछ चुभता-सा मालूम पड़ा और वे चिल्लाकर बिस्तर से अलग खड़े हो गए। उनके सर्वांग में पीड़ा होने लगी थी। विवेकानन्द की अतिरिक्त असली बात किसी को न मालूम होने के कारण सब लोग उनके बिस्तर में सुई, आलपीन, कांटा, बिच्छू आदि देखने लगे। बिस्तर के कपड़े झाड़ने पर एक रुपया 'खन्' से आवाज करता हुआ नीचे गिर पड़ा। उसे देखते ही श्री रामकृष्ण सब बात समझ गए।

इस खोज-ढूंढ में विवेकानन्द जी भाग लेते हुए चोर के समान एक ओर अलग खड़े थे। तभी श्री रामकृष्ण की दृष्टि उनकी ओर गई और उन्हें अपने शिष्य का यह कौतुक मालूम हो गया। वे सदा सबसे यही कहते थे—'कोई बात मैं कहता हूँ इसलिए उस पर विश्वास न किया करो। जब तुम्हारे अनुभव में वह बात आए और जंचे तभी उस पर विश्वास करो।' वे यह भी कहा करते थे, 'साधु की परीक्षा दिन में करो, रात में करो और तभी उस पर विश्वास करो।

जिन दिनों भैरवी ब्राह्मणी श्री रामकृष्ण के पास आई, उन दिनों उन्हें विचित्र भूख लग रही थी। वे कितना भी खाते थे, लेकिन पेट भरता

ही नहीं था। रात-दिन खाने की धुन लगी रहती थी और वह किसी भी उपाय से दूर नहीं होती थी। श्री रामकृष्ण सोचने लगे, यह नई व्याधि कहां से आ गई, अतः यह बात उन्होंने ब्राह्मणी से बताई। वह बोली—'बाबा! कोई हानि नहीं। ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में जो साधक होते हैं, उनकी ऐसी अवस्था कभी-कभी हुआ करती है। शास्त्रों में इस बात का वर्णन है। मैं तुम्हारा रोग दूर किये देती हूं, तुम चिन्ता न करो।' इतना कहकर उसने एक कमरे में बड़ी थालियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ मधुर बाबू से भराकर रखवा दिए और ब्राह्मणी श्री रामकृष्ण से बोली—'बाबा, तुम अब इसी कमरे में बैठे रहो और जो मन में आए, आनन्द से चाहे जितना खाते जाओ।'

इसके बाद श्री रामकृष्ण उसी कमरे में बैठने लगे और जब किसी चीज की इच्छा होती वही खाने लगे। इस प्रकार तीन दिन बीतने पर उनकी उस विचित्र क्षुधा का समूल नाश हो गया।

दक्षिणेश्वर में एक बार श्री रामकृष्ण की पत्नी ने उनका पैर दबाते हुए उनसे अचानक प्रश्न किया—'तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो?'

श्री रामकृष्ण ने उत्तर दिया—'जो मां उस काली मन्दिर में है, वही इस शरीर को जन्म देकर अभी नौबतखाने में निवास करती है और वही यहां पर इस समय मेरे पैर दबा रही है। तू मुझे सचमुच ही साक्षात आनन्दमयी के स्वरूप में ही दिखाई देती है।'

और भी एक दिन अपनी पत्नी को अपने समीप ही सोती हुई छोड़कर अपने मन को सम्बोधित करते हुए श्री रामकृष्ण विचार करने लगे, अरे मन, इसी को स्त्री शरीर कहते, सारा संसार इसी को परम भोग्य वस्तु मानकर इसकी प्राप्ति के लिए सदा लालायित रहकर अनेक प्रयत्न करता रहता है, परन्तु इसके ग्रहण करने से देहासक्ति में सदा के लिए फंस जाने से सच्चिदानन्द ईश्वर को प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। हे मन, सच-सच बोल, भीतर एक और बाहर दूसरा ऐसा मत रख—तुझे यह शरीर चाहिए या ईश्वर चाहिए? यह शरीर ही चाहिए तो या देख, यहां तेरे

पास ही पड़ा है, इसे ग्रहण कर, ऐसा विचार करके श्री रामकृष्ण ज्योंही अपनी पत्नी का शरीर स्पर्श करने ही वाले थे कि उनका मन कुंठित होकर उन्हें इतनी गहरी समाधि लग गई कि उन्हें रात-भर देह की सुधि भी न रही। प्रातःकाल हो जाने के बाद कितने ही बार उनके कान में ईश्वर का नाम स्मरण करने पर वह समाधि उतरी।

एक दिन श्री रामकृष्ण अपने कमरे के बरामदे में बैठे थे कि एक बड़ा-सा कीड़ा उतरा हुआ आया। उसके शरीर में एक कांटा घुस गया था, जिसे वह निकालने का प्रयत्न कर रहा था। उसकी वह दशा देखकर श्री राम-कृष्ण का शरीर थर-थर कांपने लगा और वे 'हे राम ! यह तेरी कैसी शोचनीय दशा हो गई है' कहते-कहते समाधि-मग्न हो गए।

एक दिन गाड़ी में बैठकर कलकत्ता से दक्षिणेश्वर आते समय किसी बड़ी सड़क पर एक पान की दुकान दिखाई दी। दूसरी बड़ी दुकान की सीढ़ी के पास नाली के किनारे एक कमानी के नीचे मुश्किल से एक मनुष्य के बैठने लायक जगह थी। वहीं नाली पर एक तख्त रखकर उस कमानी के नीचे की तंग जगह में उस पान वाले ने अपनी दुकान सजाई थी। उस बेचारे से वहां ठीक-ठीक उठते-बैठते भी नहीं बनता था। उसके इस प्रकार के संसार को देखकर श्री रामकृष्ण की आंखें डबडबा गईं और 'मां ! मां ! तेरी माया का प्रभाव बड़ा विचित्र है' ऐसा कहते-कहते वह समाधिमग्न हो गए।

एक दिन कलकत्ता से दक्षिणेश्वर लौटते समय उनकी बग्घी एक शराब की दुकान के पास से गई। वहां ग्राहकों की बड़ी भीड़ थी और सुरापान के आनन्द में मस्त होकर कुछ लोग जोर-जोर से बातचीत कर रहे थे, कोई गा रहा था, कोई नाच रहा था—इस तरह वहां बड़ी गड़बड़ी

मची हुई थी, उन लोगों के इस आनन्द को देखकर श्री रामकृष्ण का ब्रह्मानन्द का उद्दीपन हो आया और वे एकाएक गाड़ी के भीतर ही खड़े होकर उन लोगों की ओर देखते हुए 'वाह ! वाह ! बहुत अच्छा जलसा है', कहते-कहते समाधिमग्न हो गए ।

दक्षिणेश्वर में एक बार डाक्टर सरकार किसी काम के लिए आए थे। काम हो जाने के बाद वे श्री काली मां के दर्शन के लिए मन्दिर गए। अहाते के भीतर बगीचे में से जाते समय वहां के अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध से उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। श्री रामकृष्ण वहां उस समय यों ही टहल रहे थे। उन्हें बगीचे का माली समझकर डाक्टर साहब ने उनसे दो-चार फूल तोड़कर देने के लिए कहा। कुछ दिनों के बाद जब डाक्टर साहब को अपनी भूल मालूम हुई तब वे बड़े लज्जित हुए और उन्होंने श्री रामकृष्ण से क्षमायाचना की।

एक दिन एक भक्त के यहां श्री रामकृष्ण को भक्त मंडली सहित भजन करने के लिए निमन्त्रण दिया गया था। भजन के बाद फलाहार के समय वह भक्त, कुछ बड़े लोग जो वहां आये थे, उनके आतिथ्य में लग गया और श्री रामकृष्ण वैसे ही बैठे रह गए। देवता को त्यागकर देवालय की पूजा होने लगी ! श्री रामकृष्ण में तो मान-अपमान का भाव ही नहीं था। कुछ समय तक ठहरकर अपनी ओर किसी को ध्यान न देते हुए वे कहने लगे, 'अरे क्यों भाई क्या हमारी ओर कोई नहीं देखते ?' उनके साथ आए भक्तों में से एक व्यक्ति क्रुद्ध होकर कहने लगा, 'चलिए महाराज ! हम लोग दक्षिणेश्वर चलें।' श्री रामकृष्ण बोले, 'अरे बाबा ऐसा क्रोधित होने से कैसे चलेगा ? पास में तो फूटी कौड़ी भी नहीं है और गुस्सा तो देखो इतना और इतनी रात को जायेंगे भी कहां ? गाड़ी का भाड़ा कौन देगा ? जरा ठहरो, उन लोगों की व्यवस्था हो जाने के बाद अपनी भी तजवीज़ हो जाएगी ।' इतने में ही उस गृहस्वामी को श्री रामकृष्ण का स्मरण हो आया और उसने उनकी सब प्रकार से उचित व्यवस्था कर दी।

श्री रामकृष्ण वचनामृत

—जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण !

—जब मेरे पिता रास्ते से जाते थे, तब आस-पास के लोग जल्दी-जल्दी उठकर खड़े हो जाते थे और आदरपूर्वक कहा करते थे, 'देखो वे आ रहे हैं।'

—जब वे तालाब में स्नान करते, तो उनका स्नान समाप्त होने तक कोई भी दूसरा मनुष्य तालाब में नहीं उतरता था।

—गांव के लोग ऋषि के समान उनका आदर करते थे।

—मेरी माता अत्यन्त सरल स्वभाव की थीं। दूसरों को भोजन कराना उन्हें बहुत प्रिय था। वह छोटे बच्चों पर प्रेम करती थीं।

—मेरी माता सरलता की मूर्ति थीं। संसार की मामूली-मामूली बातें नहीं समझती थीं। उन्हें पैसा गिनना भी ठीक-ठीक नहीं आता था। कौनसी बात दूसरे को बताना और कौनसी नहीं बताना चाहिए, यह भी वह नहीं जानती थीं। इस कारण लोग उन्हें भोली कहा करते थे।

—मेरे पिता गया गए हुए थे। वहां श्री रामचन्द्र जी ने स्वप्न में प्रकट होकर उनसे कहा कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊंगा।

—हमारे पिता शूद्र से पान कभी नहीं लेते थे।

—दिन-भर के जप-ध्यान-पूजा में ही निमग्न रहा करते थे।

—दस-ग्यारह वर्ष का था तब विशालाक्षी के दर्शन को जाते समय मुझे भावसमाधि लग गई।

—बचपन में लाहाबाबू के घर पण्डितों की मण्डली जो बातें करती, प्राय: वे सब मेरी समझ में आ जाती थीं।

—छुटपन में जब बुद्धि की शाखायें नहीं फूटी होती हैं, उस समय मन सहज ही ईश्वर में लग जाता है। बड़ी आयु में बुद्धि की शाखायें फूटने पर कहीं मन ईश्वर में लगाने से भी नहीं लगता।

मनुष्य देह धारण करने पर सभी कार्य मनुष्यों के समान होते हैं, ईश्वर को मनुष्य के समान सुख-दुख का भोग करना पड़ता है और मनुष्य के ही समान उद्योग और प्रयत्न करके सब विषयों में पूर्णता प्राप्त करनी पड़ती है।

—आचार्य को सभी अवस्थाओं का स्वयं अनुभव प्राप्त करना होता है।

—यहां (मेरे द्वारा) सब प्रकार के साधन—ज्ञानयोग, भक्ति योग, कर्मयोग और हठयोग भी—आयु बढ़ाने के लिए सम्पन्न हो चुके हैं।

—मुझे कोई भी साधन करने के लिए तीन दिन से अधिक समय नहीं लगा।

मेरी अवस्था उदाहरणस्वरूप है।

स्थूल भाव से समाधि दो प्रकार की होती है। ज्ञानमार्ग से विचार करते-करते 'अहंकार' का नाश हो जाने पर जो समाधि होती है उसे 'स्थिर' 'जड़' अथवा 'निर्विकल्प' समाधि कहते हैं। भक्ति मार्ग की समाधि को 'भाव समाधि' कहते हैं। इस प्रकार समाधि में सम्भोग के लिए या आस्वादन के लिए किंचित अहंभाव शेष नहीं रहता।

—शुद्ध ज्ञान और शुद्ध भक्ति दोनों एक हैं।

—दाल रोटी प्राप्त करने वाली विद्या मुझे नहीं चाहिए, मुझे तो वही विद्या चाहिए जिससे कि हृदय में ज्ञान का उदय होकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

—रानी रासमणी जगदम्बा की अष्ट नायिकाओं में से एक थीं।

—माता भोजन करती है। काली घाट में और विश्राम करती है दक्षिणेश्वर में।

—हृदय न रहता तो साधना काल में यह शरीर न टिकता। उसकी सेवा मैं नहीं भूलूंगा।

—लज्जा, घृणा, भय—इन तीनों के रहते हुए ईश्वर लाभ नहीं

होता ।

—अत्यन्त व्याकुल होकर ईश्वर की पुकार करो, तब देखो भला ईश्वर कैसे दर्शन नहीं देता ?

—पानी में डुबा दिए जाने पर ऊपर आने के लिए प्राण जैसे व्याकुल हो उठते हैं, उसी तरह ईश्वर दर्शन के लिए हो जाय, तभी उसका दर्शन होता है ।

—सती का पति के प्रति प्रेम—माता का बालक के प्रति प्रेम और विषयी मनुष्य का विषय के प्रति प्रेम । इन तीनों प्रेमों को एकत्रित करके ईश्वर की ओर लगाने से उसका दर्शन पा सकते हैं ।

—अरे भाई ! ईश्वर को साक्षात् देख सकते हैं । अभी तुम और हम जैसे गप्पें लगा रहे हैं, उससे भी अधिक स्पष्ट रूप से ईश्वर से बातचीत कर सकते हैं । मैं सत्य कहता हूं । शपथपूर्वक कहता हूं ।

—ईश्वर दर्शन के लिए व्याकुलता—अधिक नहीं तीन ही दिन—नहीं केवल 24 घण्टे—मन में टिकाओ कि उसका दर्शन होना ही चाहिए ।

—मैंने कहा—'माता, जो तूने मेरी ऐसी अवस्था कर दी है, तो अब मेरी सभी इच्छायें लुप्त करने वाला कोई बड़ा आदमी मुझसे मिला दे ।' इसी कारण तो उसने (मधुर बाबू ने) चौदह वर्ष मेरी सेवा की ।

—ब्राह्मणी उसे प्रताप रुद्र कहती थी ।

—माता ने उसे इस शरीर में न जाने क्या-क्या दिखाया । क्या व्यर्थ ही उसने मेरी चौदह वर्ष सेवा की ?

—जिस समय ईश्वर प्रेम की प्रचण्ड तरंगें बिना किसी निमित्त मनुष्य के मन में उठने लगती हैं, उस समय उन्हें हजार प्रयत्न करने पर भी पीछे नहीं हटा सकते ।

—उस समय माता का किसी न किसी रूप में दर्शन हो जाए तो ठीक अन्यथा प्राण इतने व्याकुल हो जाते थे मालूम पड़ता था कि प्राण अभी निकल रहे हैं ।—और लोग कहते थे कि यह पागल हो गया है ।

—मेरे जीवन में लगातार 12 वर्ष तक ईश्वर प्रेम का प्रचण्ड तूफान उमड़ा हुआ था ! भिन्न-भिन्न रूपों में कैसे देखूं—यह धुन मुझ पर सवार

थी ।

—यहां (मेरी ओर से) सर्व प्रकार की साधनाएं हो चुकीं ! ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और हठयोग भी !—आयु बढ़ाने के लिए ।—

—मैं जब सोलह नाच नाचूंगा तब कहीं तुम एकाध सीखोगे।

—उसके खुले हुए केश और वात्सल्य भाव के कारण विह्वल अवस्था को देखकर, लोगों को ऐसा मालूम होता था कि मानो यह गोपाल—विरह से व्याकुल नन्दरानी यशोदा ही है (भैरवी ब्राह्मणी के लिए सम्बोधित) ।

—जितने मत हैं उतने ही मार्ग हैं। मन पर निष्ठा रखनी चाहिए, पर दूसरों के मत की निन्दा नहीं करनी चाहिए ।

—सिद्धियां परमेश्वर-प्राप्ति के मार्ग में बड़ी विघ्न हैं।

—विवेक और वैराग्य के बिना ज्ञानशास्त्र व्यर्थ है।

—मुख्य-मुख्य चौंसठ तंत्रों में जो साधनाएं बतलाई गई हैं, उन सभी साधनाओं का अभ्यास मुझ से ब्राह्मणी ने एक के बाद एक कराया। कितनी कठिन हैं वे साधनाएं। उन साधनाओं का अभ्यास करते समय बहुतेरे साधक पथभ्रष्ट हो जाते हैं, पर माता की कृपा से मैं उन सभी साधनाओं को पार कर सका ।

—फिर आने लगे रामायण पंथ के साधु ! उत्तम-उत्तम त्यागी भक्त वैरागी बाबाजी···उनमें से एक के पास से तो 'रामलला' मेरे पास आ गया।

—कामगन्धशून्य हुए बिना, महा भावमयी श्रीमती राधा के भाव को समझना असम्भव है।

—तुम इस लीला में केवल श्रीकृष्ण के प्रति राधा के अलौकिक प्रेम पर ही ध्यान दो—यही बस है। ईश्वर के प्रति इतना ही प्रेम उत्पन्न हो जाने से उसकी प्राप्ति हो जाती है। देखो भला वृन्दावन की गोपियों को, पति-पुत्र, कुल-शील, मान-अपमान, लज्जा-संकोच, लोक-भय, समाज भय इन सब को त्याग कर वे श्रीकृष्ण के लिए किस प्रकार पागल हो गई थीं ? तुम भी यदि ईश्वर के लिए इसी तरह पागल बन सको तो तुम्हें भी उसकी प्राप्ति होगी ।

—मैंने राधाभाव में बहुत से दिन बिताए। उस समय मैं स्त्रियों के समान वेष किया करता था। स्त्री वेष के लिए आवश्यक सभी चीजें—गहने तक—मधुर बाबू ने ला दीं।

—उन्नीस प्रकार के भाव एक ही जगह प्रकाशित होने से वह महा-भाव कहलाता है। जन्म-भर साधना करके, साधक अधिक से अधिक एक या दो भाव में सिद्धि प्राप्त कर सकता है। (अपनी ओर उंगली दिखाकर) यहां केवल एक ही आधार से एक ही जगह, सभी उन्नीसों भावपूर्ण रूप में प्रकाशित हैं।

—मैं उस (महाभाव की) अवस्था में तीन दिन एक संज्ञाशून्य होकर एक ही स्थान में पड़ा था। सचेत होने पर ब्राह्मणी मुझे पकड़ कर स्नान कराने के लिए ले गई। परन्तु शरीर हाथ लगाने योग्य न था! शरीर पर एक चादर भर पड़ी थी। उसी को पकड़कर वह मुझे ले चली। शरीर में लगी हुई मिट्टी भी जल गई थी।

जिस अवस्था में पहुंचकर साधारण साधक वहां से वापस लौट आते हैं तथा जिसमें इक्कीस दिनों में ही उसका शरीर पके हुए पत्ते के समान झड़ जाता है, उसी अवस्था में मां की कृपा से मैं पूरे छः महीने रहा।

—जिसके हृदय में भक्तिभाव रहता है, वह यदि तीर्थयात्रा करने जाता है तो उसका भाव और अधिक बढ़ जाता है। जिसके हृदय में भक्ति-भाव है ही नहीं, उसे तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं होता।

—देवस्थान और तीर्थों के दर्शन के पश्चात् उन्हीं भावों को बारम्बार भजन करना और पुनः-पुनः स्मरण करना चाहिए।

—वही पुरुष डुबकी लगाकर इधर बाहर निकला तो कृष्ण हो गया, उधर निकला तो ईसा हो गया।

—सिक्खों के दस गुरु राजा जनक के अवतार हैं।

—सांचा तैयार हो गया है—अपना-अपना जीवन उसमें ढालकर गढ़ लो।

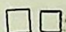
—धर्म की प्राप्ति कैसे हो, ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो, इन विचारों से व्याकुल होकर जो यहां आयेंगे, उनके मनोरथ पूर्ण होंगे।

साधक जन्म-भर परिश्रम करके बड़े कष्ट से एक-दो भावों में सिद्ध हो

सकला है, पर यहां तो एक ही साथ एक ही पात्र के आधार में वैसे उन्नीस भाव रहते हैं।

—भगवान सब मनुष्यों में है, परन्तु सब मनुष्य भगवान में नहीं हैं। यही कारण है कि वह कष्ट भोगते हैं।

—क्या तुम भगवान को ढूंढ़ते हो ! तो उसे मनुष्य में ढूंढ़ो। पदार्थों की अपेक्षा मनुष्य के अन्दर ही देवत्व का सबसे अधिक निवास है।



राष्ट्रभाषा को प्रोत्साहन दीजिये

"सब को हिन्दी सीखनी ही चाहिए। इसके द्वारा भावविनिमय से सारे भारत को सुविधा होगी।"—चक्रवर्ती राज गोपालाचारी

"हिन्दी की होड़ किसी प्रान्तीय भाषा से नहीं, केवल अंग्रेजी के साथ है।"—डा० राजेन्द्र प्रसाद

"देश के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जाने वाली हिन्दी ही राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है।"—सुभाष चन्द्र बोस

"हिन्दी पढ़ना और पढ़ाना हमारा कर्तव्य है। उसे हम सबको अपनाना है।"—लालबहादुर शास्त्री

"हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए।"—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

"हिन्दी अब सारे भारत की राष्ट्रभाषा बन गई है। हमें उस पर गर्व होना चाहिए।"—सरदार वल्लभ भाई पटेल

"हिन्दी देश की एकता की कड़ी है।"—डा० जाकिर हुसेन

"हिन्दी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।"—स्वामी दयानन्द

"मेरे देश में हिन्दी की इज्जत न हो, यह मैं नहीं सह सकता।"—विनोबा भावे

"हिन्दी एक जानदार भाषा है। वह जितनी बढ़ेगी देश को उतना ही लाभ होगा।"—जवाहर लाल नेहरू

"देश को किसी सम्पर्क-भाषा की आवश्यकता होती है, और वह (भारत में) केवल हिन्दी ही हो सकती है।"—श्रीमती इन्दिरा गांधी

अनमोल वचन

समय विपरीत होने पर धैर्य न छोड़ो।
ओम परमात्मा का मुख्य नाम है।
मैं अपने चरित्र विकास के लिए माता का आभारी हूं
जवानी हिम्मत और साहस का दूसरा नाम है।
बिना अनुभव कोरा शाब्दिक ज्ञान अंधा है।
मन ही मनुष्य के बंधन एवं मोक्ष का कारण है।
सत्यवादियों को नमस्कार।
विद्वानों के संग से तथा सत्कार से ज्ञान मिलता है।
सादा जीवन उच्च विचार।
हे प्रभु बार-बार प्रणाम ।
ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में है।
साधू संग करने से जीव का माया रूपी नशा उतर जाता है।
उस पुत्र से क्या जो न विद्वान न धार्मिक।
जब क्रोध आए तो दस बार सोचकर बोलो।
सदा सत्य की विजय होती है, अतः सत्य को अपनाएं ।

—अज्ञात

"सौम्य, सज्जन तथा निरभिमान और सर्वोप-कारक मनुष्य ही वास्तविक सन्त होते हैं। ऐसे सन्त सन्तई को न स्वयं ओढ़ते हैं और न ही उसका बिछावन बनाते हैं। सन्तई तो दुःखियों की परित्राण करने वाली ढाल होती है और सन्त परित्रायक योद्धा।"

—आचार्य भरतराम भट्ट

स्वामी रामकृष्ण